समर्पण

मेरे श्रद्धेय पिता,

स्वर्गीय श्रीमान् "केवलचन्दजी सा. पांड्या" अपने अनोखे व्यक्तित्व वाले प्राणी थे। वे सरल, निष्कपट, उदार, सहिष्णु एवं स्वाभिमानी थे। धर्मप्रेमी होने के कारण उनका जीवन शान्तिमय होता। किसी भी परेशानी एवं बाधा के आने पर भी वे व्याकुल नहीं होते थे वरन् धर्माराधन में लग जाते थे। वे दृढ़ निश्चयी थे। अपने निश्चय से विमुख नहीं होते थे। उनके नित्यकर्म में, कोई भी बाधा आने पर भी, अनियमितता नहीं आती थी। आपने अपने जीवन में जो उद्देश्य बना रखे थे उनका अक्षरशः पालन करते थे।

आपके दो पुत्र एवं तीन पुत्रियां हैं। जिन्हें आपने उनके अनुकूल उच्च शिक्षा दिलाई एवं सुयोग्य बनाया।

सहृदय एवं सरल परिणामी होने के कारण आपका स्वर्गवास समाधि के समान त्याग पूर्वक हुआ एवं अन्तिम क्षण तक भी आप पंच परमेष्ठी का नाम लेते रहे।

आज आप हम लोगों के बीच में नहीं हैं किन्तु आपके आदर्श हमें प्रेरणा देते रहते हैं। आप सहर्ष प्रत्येक धर्म कार्य में योगदान देते रहते थे। उन्हीं की पावन स्मृति में यह पुस्तक "उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला" पाठकों को सप्रेम समर्पण की जा रही है, ताकि वे इसे पढ़कर धर्माराधन में लीन होवें।

आपकी पुत्री
प्रभा

उत्पन्न हुई स्व-पर तत्व की श्रद्धा से भेद ज्ञान उत्पन्न होने पर और भी अनादि काल संचित भी विनष्ट होती है। इस तरह सद्देव गुरु और धर्म के सम्यक् श्रद्धान से ही जीवको गृहीत और अगृहीत दोनों प्रकार के मिथ्यात्वों से छुटकारा मिलता है जो मुमुक्षु को सर्वथा और सर्व प्रथम अभीष्ट है।

ग्रन्थ कर्ता ने सद्गुरु के निर्णय की ओर आत्मार्थ जीवों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया है। उसका मुख्य कारण यह है कि गुरु ही वस्तुतः धर्मतत्व के वाहक होते हैं वे स्वयं मोक्षमार्गी स्वयं होते हुये संसार के प्राणियों को भी मोक्षमार्ग में लगाते हैं। इसलिये मुमुक्षु को गुरु के निर्णय में थोड़ी सी भी त्रुटि नहीं करना चाहिये अन्यथा कुगुरुओं का संसर्ग जीव का उल्टा अहित ही करता है। ग्रन्थ कर्ता लिखते हैं।

सप्पो इक्कं मरणं, कुगुरु अणंताइ देइ मरणाइं।
तो वर सप्पं गहियं, मा कुगुरु सेवणं भद्द ॥

तात्पर्य यह कि सर्प डस ने से तो जीव का एक बार ही मरण होता है किन्तु कुगुरुओं से आत्मघात होने पर जीव के अनन्त जन्म नष्ट हो जाते हैं इसलिये सर्पदंश से भी बढ़ कर कुगुरुओं से आत्मघात का भय कहीं अनन्त गुना भयंकरकारी है।

अन्य धर्मों की बात जाने दीजिये एक जैन धर्मानुयायी ही जो इतनी अधिक शाखा प्रशाखाओं में विभक्त है और होते जा रहे हैं यह सब उत्सूत्र भाषी और शिथिलाचारी गुरुओं की ही देन है। ग्रन्थ कर्ता एक उदाहरण द्वारा यही बात दिखाते हैं।

जह कोइ सुकुल वहुणो, सीलं मइलंति लिंति कुलणालं।
मिच्छत्त मायरंतवि वहन्ति तह सुगुरु केरत्तं ॥

अर्थात् जैसे कोई कुल वधु अपने शील व्रत को भंग करती हुई अपने कुल के नाम से अपने को कुलीन कहती है। उसी प्रकार मिथ्या आचरण करते कराते हुये भी अनेक कुगुरु अपने को सद्गुरु का शिष्य प्रगट करते हैं।

इस तरह वीतराग देव की सराग उपासना, गुरुओं की आरम्भ परिग्रह सहित विषयानुराग रूप ही प्रवृत्तियां एवं धर्म के नाम पर धर्माडम्बर या धर्मान्धता का प्रचार और प्रसार देखकर अन्त में ग्रन्थकर्ता क्षुब्ध हृदय से अपनी अन्तर्भावना व्यक्त करते हैं—

कइया होइ दिवसो जइया सुगुरुण पाय मूलम्भि।
उत्सूत्र लेस विसलप, रहिउण .सुणेसु जिणधम्मं ॥

अर्थात वह दिवस कब होगा जब मैं सुगुरु के चरणों में बैठकर उत्सू की विष कणिका रहित शुद्ध जिनधर्म का स्वरुप सुनूंगा।

अतः पाठकों से निवेदन है कि ग्रन्थकर्ता ने समाज में मिथ्यात्व बढ़ते हुये प्रचार को देखकर उससे प्रत्येक मुमुक्षु को बचने की प्रबल प्रेरण जिस पवित्र भावना से दी है उसका आदर कर इस ग्रन्थ का स्वाध्याय क और देव शास्त्र गुरु के स्वरुप का सम्यक् निर्णय कर मोक्ष मार्ग में अग्रसर हों

हस्त लिखित प्रतियों में कितनी अशुद्धियां रहती हैं यह विद्वान जानते ही हैं। फिर प्राकृत भाषा की गाथाओं का तो कहना ही क्या है। तथापि अर्थ के आधार पर गाथाओं का संशोधन करते हुये भी मेरी अल्पज्ञता के कारण कोई त्रुटि रह गई हो तो विद्वान संशोधन कर पढ़ें और मुझे उसकी सूचना अवश्य दें।

पं. दयाचन्द शास्त्री
उज्जैन

स्वर्गीय श्रीमान् "केवलचन्दजी सा. पांड्या"

(१०.९.१२ – १९७८)

आपकी पुण्य स्मृति में सप्रेम भेंट

स्वर्गीय श्रीमान् "केवलचन्द्रजी सा. पांड्या"

(१९१३ – १९७२)

आपकी पुण्य स्मृति में सप्रेम भेंट

ॐ

॥ श्री सर्वज्ञवीतरागाय नमः ॥

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥१॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलङ्का ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥

॥ श्री परमगुरवे नमः परम्पराचार्यगुरवे नमः ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं धर्मसम्बन्धकं भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री "[illegible]" नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्री गणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्री............ विरचितं, श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ॥

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥१॥

सर्वमंगलमांगल्यं, सर्वकल्याणकारकम् ।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम् ॥२॥

卐 卐

श्री

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

अथ "उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला" नाम ग्रंथ को
वचनिका भागचन्द कृत लिख्यते ॥

दोहा

वीत राग सर्वज्ञ के, वंदूं पद शिवकार ।
जासु परम उपदेश मणि माला त्रिभुवनसार ।

ऐसे निर्विघ्न शास्त्र की परि समाप्ति आदि प्रयोजन के अर्थ अपने इष्टदेव को नमस्कार करि "उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला" नाम ग्रंथ की वचनिका लिखिये हैं ।

तहां इस ग्रंथ में देव, गुरु, धर्म, के श्रद्धान का पोषक उपदेश नीके किया है, सो यहु मोक्षमार्ग का प्रथम कारण है । जाते सांचे देव गुरु धर्म की प्रतीति होने तें यथार्थ जीवादिकनि का श्रद्धान, ज्ञान, आचरण रूप मोक्षमार्ग की प्राप्ति होय, तब जीव का कल्याण होय है । तातें आपका कल्याणकारी जानि इस शास्त्र का अभ्यास करण योग्य है ।

गाथा

अरिहंदे वो सुगुरु सुद्ध, धम्मं च नव-धारो ।
धण्णाण कयत्थाणं,

अर्थ

घार घातिया कर्मनि का नाश करि अनंत ज्ञानादिक की प्राप्ति भये । ऐसे अरहंत देव बहुरि अतरंग मिथ्यात्यादि अर बहिरंग यस्त्रादि परिग्रह रहित, ऐसे प्रशंसा योग्य गुरु, अर हिंसादि दोष रहित निर्मल जिन भासित धर्म, अर पंच परमेष्ठीन का वाचक पंच णमोकार मंत्र, ये पदार्थ, किया है, आपका कार्य जिनते ऐसे जे उत्तम पुरुष जिनके हृदय विषें निरतंर यसे हैं ।

भावार्थ

अरहंतादिक के निमित्त तें मोक्षमार्ग की प्राप्ति होय है। तातें निकट भव्यन ही के इनके स्वरुप का विचार होय है। अन्य मिथ्यादृष्टिन को इनकी प्राप्ति होना दुर्लभ है ॥ १ ॥

गाथा

जइ ण कुणसि तवयरणं, णप्रढसिण गुणसि ददासिणो दाणं
ता इति यंण सक्किसि, जं देवो इक्क अरिहंतो ॥ २ ॥

अर्थ

जो आपकी शक्ति के हीन पना तै तू तपश्चरण न करे है, अर विशेष नाहीं पढे हैं । अर विचार नाहीं करे हैं, तो भला ही मत कर, परंतु एक सर्वज्ञ वीतराग देव की श्रद्धा दृढराख । जाते तिस कार्य के करने को एक अर्हंत देव समर्थ हैं । ता कार्य करने को ये तपश्चरणादि समर्थ नाहीं ।

भावार्थ

जो पुरुष शक्ति के हीन पने ते तपश्चरणादि न करे हैं। अर अर्हंत के मत की श्रद्धा है, जो भगवान ने कहा हैं, सो सत्य है, तो वह जीव मोक्षमार्गी ही है । अर अरहंत के मत की श्रद्धा बिना घोर तपश्चरणादि करे हैं, तो भी विशेष फल पावे नाहीं ।

तातें जो शक्ति होय सो करना। अर जाकी शक्ति न होय ताका श्रद्धान करना। श्रद्धान ही मुख्य धर्म है ऐसा जानना ॥ २ ॥

गाथा

रे जीव भव दुहाइंइक्कुविय हरइ जिणमयं धम्मं।
इयराणं पणमंतो सुह कज्जे मूढ़ मुसिओसि ॥ ३ ॥

अर्थ

रे जीव एक ही जिनराज का कह्या धर्म सकल संसार के दुःखनि को हरे है। तातें हे मूढ़! सुख के अर्थ अन्य हरिहरादि कुदेवादिकानि कों नमस्कार करता संता तू ठिगाया।

भावार्थ

सकल सुख का कारण जो जिन धर्म ताहि पाय कर भी जो सुख के अर्थ अन्य कुदेवादि कों पूजे हैं, सो गाठं का सुख खोवे हैं। मिथ्यात्वादि के पोते पाप बाँध नरकादिक में उलटा दुःख भोगवे हैं ॥ ३ ॥

गाथा

देवेहिं दाणवेहिं णसुउ मरणाउ रक्खिउ कोवि।
दिढ़कय जिण सम्मत्ता बहुविय अजरामरं पत्ता ॥ ४ ॥

अर्थ

देव कहिये कल्पवासी, दानव कहिये भवनत्रिक इन करि कोई मरण तें राख्या सुन्या नाहीं। बहुरि दिढ़ किया है जिनराज का सम्यक् जिनने ऐसे पुरुष हैं, ते घने ही अजर अमर पने को प्राप्त भये।

भावार्थ

इस जीव को सब भयनि तें मरण का भय बड़ा है। ताके निवारवे के अर्थ कुदेवादिक को पूजे हैं। सो कोई भी मरण

तें बचाय सके नाहीं । तातें उनको पूजना वंदना मिथ्याभाव है। बहुरि जिनमत के श्रद्धान तें मोक्ष की प्राप्ति होय है । तहां सदा अविनाशी सुख भोगे हैं । तातें जिनराज ही मरण का भय निवारे हैं, ऐसा जानना ।। ४ ।।

गाथा

जह कुवि वेसारत्तो, मुसिज्जमाणो विमण्णए हरिसं
तह मिच्छवेस मुसिया, गयंपि ण मुणंति धम्मणिहिं ।।५।।

अर्थ

जैसे कोई वेश्या विषें आसक्त पुरुष है, सो आपका धन मुसावता भी हर्ष माने है । तैसें मिथ्या भेषनि करि ठिगाये जीव हैं, ते गया जो धर्म निधि ताको भी न जाने है ।

भावार्थ

जैसे कोई वेश्या आसक्त तीव्र राग के उदय करि धन ठिगावता भी हर्ष माने है । ते मिथ्यात्व के उदय करि मिथ्या भेष जे रक्तांबर, श्वेतांबर, हंस, परमहंस, एकदंडी, त्रिदंडी इत्यादिकनिं को धर्म के अर्थ हर्ष तें पूजे हैं, वंदे हैं । तहां सम्यक्-दर्शन की हानि होय है । ताकों न जाने है, यहु मिथ्यात्व की महिमा है । आगे कोऊ कहे । जो हमारी मिथ्या भेषनि की सेवा कुल क्रम तें चली आई है, या सर्व लोक इनको सेवे हैं । तातें कुलधर्म को हम कैसें छोड़ें ताकू समझाइये हैं ॥ ५ ॥

गाथा

लोय पवाहे स कुल-कम्मम्मि जइ होदू मूढ़ धम्मुत्ति
ता मिच्छाण विधम्मो धकाइ अहम्म परिवाडी ६ ॥

है मूढ जो लोक प्रय

मान्या आचरण अर अपना कुलक्रम ता विर्षे जो धर्म होय तो म्लेच्छन के कुल विर्षे चली आई हिंसा सो भी धर्म होय। अर अधर्म की परिपाटी कौन होय, तातें लोक प्रवाह में या कुलक्रम में धर्म नाहीं। धर्म तो जिन भाषित वीतराग भाव रुप है। आपके कुल में साचां भी जिन धर्म चाल्या आया होय, अर ताकों कुलक्रम जानि सेवे तो विपेश कुल दाता नाहीं, तातें जिणवाणी के अनुसार निर्णय करि धर्म धारण योग्य है ॥ ६ ॥

गाथा

लोयम्मिरायणीई णायं ण कुल कम्मम्मि ।
कय अविकिंपुणति लोय पहुणो जिंणिदधम्महि गारम्मि ॥७॥

अर्थः—लोक में भी राजनीति है, जो न्याय कुलक्रम विर्षे कदाचित् न होय हैं तो कहा, तीन लोक का प्रभू जो अरहंत ताके जिन धर्म के अधिकार विर्षे कुलक्रम के अनुसार न्याय होय, कदाच न होय।

भावार्थः—लोक में राजा भी कुल के अनुसार न्याय न करे हैं। बड़ेन के कुल का है, अर जो चोरी अन्याय करेगा तो वांकू दंडही देयगा। तो अलौकिक जो जिन-धर्म तामें कुल का न्याय कैसे होय। बड़े आचार्यन के कुल का नाम करि पाप करेगा तो पापी हो है, गुरु नाहीं ऐसा जानना ॥ ७ ॥

गाथा

जिणवयण वियत्तूणवि जीवांण जं ण होइ भव विरई।
ता कह अवियत्तूणवि मिच्छत्त हयाण पासम्मि ॥८॥

अर्थः—जिन वचन को जानि करि भी जो संसार तें उदासीनता न होय है, तो जिन वचन को बिना जाने मिथ्यात्व करि हते जे कुगुरु तिनके निकट संसार तें उदासीनता कैसे होय।

भावार्थः—केई जीव संसार तें छूटने के अर्थ भी कुगुरुन कों सेवै है। तिनको कह्या है, जो वीतराग भाव के पोषक जो जिनवचन ताहि जानकरि भी कर्म देव के वशतें संसार तें उदासीनता न उपजे है, तो राग द्वेष के पुष्ट करने वाले जे कुगुरु तिनके निकट विरक्तता कैसें उपजेगी। कदाचि न उपजेगी ॥ ८ ॥

गाथा

विरयाणं अविरए जीवे दट्ठुन होई मणतावो।
हा हा कह भव कूवे बूडंतापिच्छमच्चंति ॥ ९ ॥

अर्थः—असंयमी जीवनि को देखि करि संयमीन के मन में बड़ा संताप होय है। जो हाय हाय देखहु संसार कूप में डूबते संते ये जीवना चाहे है।

भावार्थः—अज्ञानी जीव हंसि हंसि के मिथ्या ... भये संसार ... कारण करम बंध ... श्रीगुरुन के ... हैं। जो ये ... वीतराग वचो ... ॥ ९ ॥

(आगे सब ... में अविरत ... हैं

गाथा

आरंभजम्मिपा... पावंति
जं पुण ...

अर्थः—व्यापारादि ...
संते जीव तीव्र ...
करि भी जीव दर्शन...
पावे है।

भावार्थः—केई जीव व्यापारादिक को छोड़ी जिन आज्ञा बिना आचरण करते भी आपको गुरु माने हैं। तिनको कह्या है जो आरंभ जनित पाप करि नरकादिक दुःख तो पावे हैं, परन्तु कदाच मोक्ष-मार्ग की प्राप्ति भी होय है। अर जिनवाणी के श्रद्धान रूप मिथ्यात्व के अंश करि तो मोक्षमार्ग अत्यन्त दुर्लभ होय है। तातैं सब पापनि में मिथ्यात्व बड़ा पाप है ॥ १० ॥

गाथा

जिणवर आणा भंगं उमग्ग उस्सुत लेस देसणयं।
आणा भंगे पावं ताजिणमय दुक्करं धम्मं ॥ ११ ॥

अर्थः—जिन सूत्र उलंघि अंशमात्र भी उपदेश देना है, सो जिनवर को आज्ञा भंग करणा है। अर मार्ग की उलंघकरि प्रवर्तना है। अर आज्ञा भंग विषें ऐसा पाप है। जातें जिन भाषित धर्म दुर्लभ होय जाय है।

भावार्थः—जिनवर की आज्ञा सिवाय कषाय के वशतें एक अक्षरभी कहें तो ऐसा पाप होय, जाकरि निगोद चल्या जाय। फेरि जिनमत पावना दुर्लभ होय जाय। तातें जिनवाणी सिवाय अपनो पद्धति बढावने अर्थ वा मानादिक पोषणे के अर्थ उपदेश देना योग्य नाहीं ॥ ११ ॥

गाथा

जिणवर आणा रहिय वड्डारंताविं केवि जिणदव्वं।
बुड्डंति भव समुद्दे मूढा मोहेण अण्णाणो ॥ १२ ॥

अर्थः—कोई पुरुष जिन आज्ञा रहित जिन-द्रव्य जो चैत्यालय का द्रव्य ताहि बढावे है। ते अज्ञानी मोह करि संसार समुद्र विषें डूबे हैं।

भावार्थः—कोई जीव चैत्यालय के द्रव्य तें व्यापार करे हैं। अर केई उधार लेय आजीविका करे हैं। ते जिन आज्ञा तें पराङ्मुख हैं, अज्ञानी हैं, वे जीव महापाप बांधि संसार विषैं डूबे हैं॥१२

गाथा

कुग्गह गह गहियाणं मुद्धो जो देइ धम्म उवएसो।
सो चम्मासी कुक्कर वयणम्मि खवेइ कप्पूरं ॥१३॥

अर्थः—खोटे आग्रह रुप पिशाच करि ग्रहे जे जीव, तिनकों जो मूर्ख धर्मोपदेश देय हैं। सो चामड़े का खानेवाला जो कूकर ताके मुख में कंपूर डाले हैं। जिनके तीव्र मिथ्यात्व का उदय है, तिनकूं जिनवाणी रुचे नाहीं ॥ १३ ॥

गाथा

रोसोपि खमाकोसो, सुत्तं भासंत जस्स धण्णस्स।
उस्सूत्तेण खमाविय दोस महामोह आवासो॥ १४॥

अर्थः—जिन सूत्र के अनुसार, उपदेश देने वाला, जो उत्तम वक्ता ताका रोष भी क्षमा का भंडार है, । बहुरि सूत्र कों उलंघकरि उपदेश देय हैं, ताकी क्षमा भी रागादिक दोष अर मिथ्यात्व का ठिकाना हैं।

भावार्थः—वक्ता यथार्थ उपदेश देय हैं। अर कारण के वश तें क्रोधकरि भी कहे हैं। तो भी वह क्षमा ही है। वाका प्रयोजन तो धर्म में लगावना है। अर जो आजीविकादिक के अर्थ यथार्थ उपदेश देय हैं सो आपका व पर का अकल्याण करने ते, ताकी क्षमा भी आशय के वश तें दोषरुप है॥ १४ ॥

गाथा

एक्कोविण संदेहो, जं जिणधम्मेण अत्थि मोख सुहं।
तं पुण दुव्विणेयं अइ उविकट्ठ पुण्ण रसियाणं ॥१५॥

अर्थः—जिन राज के धर्म करि मोक्ष होय है। जामें एक प्रकार भी संदेह नाहीं। तातें जे उत्कृष्ट धर्म रस के रसिक हैं। तिनकों सो ही जिन धर्म कष्ट करि जानना योग्य है।

भावार्थः—जीव का हितकारी एक जिन धर्म ही है। तातें अति कष्ट करि भी ताका स्वरूप जानना योग्य है। अन्य लौकिक वार्ता सीखने में कछु आत्महित नाहीं। वे तो कर्मानुसार सब ही के बनि रहे हैं ॥ १५ ॥

गाथा

सव्वंपि वियाणिज्जइ लब्भइ तह चउरि भाय जणमज्झे।
एक्कवि मायदुलहं, जिणमय विहिरयण सुविआणं ॥१६॥

अर्थः—और लौकिक वार्ता तो सब ही जानिये हैं। बहुरि संसे ही चोहटे में पड्या रत्न भी पाइये हैं। परंतु हे भाई। जिन-भाषित धर्म रूप रत्न का सम्यक् लाभ दुर्लभ है। तातें जिस तिस प्रकार जिनधर्म का स्वरूप जानना योग्य है। यह तात्पर्य है॥१६॥

गाथा

मिच्छत बहुलभावे विउद्ध सम्मत कहणमवि दुलहे।
जह वर णरवर चरियं पावणरिंदस्स उदयम्मि ॥१७॥

अर्थः—मिथ्यात्व का तीव्र उदय विषें निर्मल सम्यक्त्व का कहना भी दुर्लभ है जैसें पापी राजा के उदय विषें न्यायवान राजा का आचरण दुर्लभ है।

भावार्थः—इस निकृष्ट क्षेत्रकाल में मिथ्यादृष्टी का तीव्र उदय है। तातें अब यथार्थ कथन करने वाले भी दुर्लभ है। आचरण करने वाले जन की तो कहा कहिये ॥ १७ ॥

गाथा

बहु गुण विज्जाणिलउ, उस्सूत भासी तहा विमुत्तव्वो।
जह वरमणिजुत्तो विहु विग्धपरो विसहरो लोए ॥१८॥

अर्थः–सूत्र को उलांघ उपदेश देने वाला पुरुष बहुत क्षमादि गुण अर व्याकरणादि विद्यानि का स्थान होय तो भी त्यागना योग्य है। जैसे लोक विषें सर्प श्रेष्ठ मणि करि सहित भी विघ्न का कर्ता है।

भावार्थः–विद्यादिक चमत्कार देखि करि भी कुगुरु का प्रसंग करण योग्य नाहीं। तातें स्वेच्छाचारी के उपदेश तें आपके श्रद्धानादिक मलीन होय, तातें बड़ी हानि होय है ॥ १८ ॥

गाथा

सयणाणं वा मोहे, लो आधिप्पंति अत्थ लोहेण।
णोधिप्पंति सु धम्मे, रम्मे हा मोह माहप्पं ॥ १९ ॥

अर्थः–संसारी जीव हैं ते प्रयोजन के लोभ करि पुत्रादिक स्वजननि का मोह को ग्रहण करे हैं। अर यथार्थ जिनधर्म को अंगीकार नाहीं करे हैं। हाय हाय ! यहु मोह का महात्म्य है।

भावार्थः–समस्त जीव आपको सुखी चाहे हैं। परंतु सुख कारण जो जिनधर्म तांकू तो न सेये हैं। अर पाप बंध के जे पुत्रादिक तिनसे स्नेह करे हैं। सो यहु महात्म्य है। ॥ १९ ॥

गाथा

गिह वावार परिस्सं खिण्णाण णराण वे
एगाण होई रमणी, अण्णेसि जिणिंद वर

अर्थः–घर के व्यापार का जो परिश्रमण ता करि खेदखिन्न ऐसे जे केई अज्ञानी जीव तिनके विश्राम का स्थान स्त्री हैं। बहुरि केई ज्ञानी जीवनि के जिनेंद्रका भाष्या श्रेष्ठ धर्म विश्राम का स्थान है।

भावार्थः- अज्ञानी जीव तो सुख का कारण स्त्री आदि पदार्थ नि को माने है। बहुरि ज्ञानी जन हैं ते वीतराग भावरुप जिन धर्म ही को सुख का कारण माने हैं ॥ २० ॥

गाथा

तुल्लेवि उअर भरणे मूढ़ अमूढाण पच्छ सुविवागं।
एगाण णरय दुःखं अण्णेसिं सासयं सुक्खं ॥ २१ ॥

अर्थः–उदर भरने में समान होते भी ज्ञानी अर अज्ञानीनि के क्रिया का फल देखहु। एकें अज्ञानीनि के तो नरक का दुःख होय है। अर ज्ञानीनि के अविनाशी सुख होय है।

भावार्थः- अपना उदर भरकें आपकी पर्याय पूरी तो ज्ञानी अज्ञानी दोनों ही करे हैं। परंतु अज्ञानी अज्ञानासक्त पना तें नरक जाय हैं, अर ज्ञानी भेद-विज्ञान के बल तें कर्मनि का नाश करि सुखी होय है। तातें विवेकी होना योग्य है ॥ २१ ॥

आगे संसार तें उदास होने रुप विवेक का उपाय दिखावे हैं।

गाथा

जिणमय कहा पबंधो, संवेग करो जियाण सव्वाणं।
संवेगो सम्मत्ते, सम्मत्तं सुद्ध देसणया ॥ २२ ॥

अर्थः–जिन भाषित कथा का प्रबंध है, सो सर्व ही जीवनि के धर्म रूचि रुप है। संवेग का करता है। परंतु सम्यक् श्रद्धान होते संते संवेग होय है। बहुरि सम्यक् श्रद्धान शुद्ध गुरु के उपदेश तें होय है।

भावार्थः–शुद्ध गुरु के मुख तें जिनसूत्र सुने तो श्रद्धान पूर्वक धर्म में रुचि होय है। अश्रद्धानी के मुख शास्त्र सुने श्रद्धान निश्चल होय नाहीं, ऐसा तात्पर्य है ॥ २२ ॥

गाथा

तं जिण आण परेणय, धम्मो सो अव्व सुगुरु पासम्मि।
अह उचिऊ सट्ठाउ, तस्सुव एसस्स कहगाऊ ॥ २३ ॥

अर्थः–तातें जिन आज्ञा विषें परायण जो पुरुष ताकरि बाह्याभ्यतंर परिग्रह रहित निर्ग्रंथ गुरु निकट शास्त्र श्रवण करना योग्य है। अथवा वैसे गुरुनि का संयोग न होय तो तिस निर्ग्रंथ गुरु ही के उपदेश का कहने वाला जो श्रद्धानी श्रावक, तातें धर्म श्रवण करना योग्य है।

भावार्थः–शास्त्र श्रवण की पद्धति राखने के अर्थ जिस तिस के मुख शास्त्र न सुनना। कै तो निग्रर्थ आचार्य के निकट सुनना। कै ताही के अनुसार कहने वाले श्रद्धानी श्रावक ताके मुख सुनना। तब ही सत्यार्थ श्रद्धान रुप फल शास्त्र श्रवण तें उपजे ॥ २३ ॥

गाथा

सा कहा सो उवएसो, तं णाणं जेण जाणइ जीवो।
सम्मत्त मिच्छ भावं, गुरु अगुरु लोय धम्मण्दिी ॥ २४ ॥

अर्थः-सो ही तो कथा है । सो ही उपदेश है अर सो ही ज्ञान है । जाकरि जीव सम्यक् मिथ्या भाव कौं जाने । अर पुरुनि का स्वरूप कुगुरुनि का स्वरूप लोकरीति धर्म का स्वरूप जानें ।

भावार्थः-जिन करि हिताहित जाने ऐसे जैन शास्त्र ही सुनना । अन्य रागादिक बढ़ावने वाले मिथ्याशास्त्र श्रवण करना योग्य नाहीं ॥ २४ ॥

गाथा

जिण गुण रयण महारिहि लध्दूण विकिण जाई मिच्छत्तं ।
अह लद्धे वि णि हाणेकि विणाण पुणो विशारिहे॥२५॥

अर्थः-जिनराज के गुण रूप रत्ननि का बड़ा भंडार पाय करि भी मिथ्यात्व क्यों न जाय है । यह आश्चर्य की बात है । अथवा पाये भी केर कृपण पुरुषनि के दारिद्र रहे ही है । यामें कहा आश्चर्य है ।

भावार्थ-जिनराज को पाय करि मिथ्यात्व न जाय सो बड़ा आश्चर्य है । अथवा जा का भला होनहार नाहीं ता का ऐसा ही स्वभाव है । ऐसे जानि करि संतोष करणा ॥ २५ ॥ आगें सम्यक्त्व होने का कारण धर्म-पर्व जिनने स्थापे तिनकी प्रशंसा करे हैं ।

गाथा

सो जयउ जेण विहिया, संवच्छर चाउमासिअ सुपव्वा ।
णिद्दं धयाण जायइ जस्स पहावाउ धम्म मइ ॥ २६ ॥

अर्थः-सो पुरुष जयवंत होउ, जाने संवत्सर अर चातुर्मासिक कहिये दशलक्षण, अष्टान्हिकादिक, धर्म के पर्व निर्मापे । जिन

पर्वनि के प्रभाव तें पापीनि के भी धर्म–बुद्धि होय है। मह आरंभी भी दशलक्षणी आदि पर्वनि विषें जिन मन्दिर जाय ध सेवै है। तातें धर्म पर्व का कर्त्ता पुरुष धन्य है। ॥ २६ ॥ आ मिथ्यात्व के प्रबल करने वाले जिनने रचे तिनकी निंदा करे हैं

गाथा

णामंपि तस्स असुहं जेण णिद्दिट्ठाइ मिछपव्वाइ।
जेसिं अणु संगाउ धम्मीणवि होइ पाव मई ॥ २७ ॥

अर्थः–जाने मिथ्यात्व के पर्व जे होली, दिवाली, दशहर संक्रांति अधिक जलादिक की हिंसा होय या ऐसा एकादशी आदि व्रत जामें कंद मूलादिक का भक्षण या रात्रि भक्षण होय इत्यादि मिथ्यात्व के पर्व जाने रचे ताका नाम भी पाप बंध क कारण है। जातें तिन मिथ्या पर्वनि के प्रसंग ते धर्मात्मानि भी पाप बुद्धि होय है। धर्मात्मा के भी देखा देखी चंचल बु होय है ॥ २७ ॥

गाथा

मज्झट्ठिइ पुण एसा अणु संगेण हवंति गुण दोसा।
उक्किट्ठ पुण्णपावा, अणुसंगेण णधिप्पंति ॥ २८ ॥

अर्थः–या प्रकार गुण अर दोष प्रसंग तें होय हैं। ते मध्य स्थिति रूप होय हैं। जातें उत्कृष्ट पुण्य पाप प्रसंग तें न होय हैं भावार्थः–जे तीव्र मिथ्या दृष्टि हैं, तिनके धर्म के निमित्त मिल भी धर्म बुद्धि न होय है। अर जे दृढ श्रद्धानी हैं, ताके पाप निमित्त मिलते भी पाप बुद्धि न होय है। तातें भोले जीवनि हो जैसा निमित्त मिले तैसा परिणाम होय है। सों करे हैं ॥ २८ ॥

गाथा

अइसय पावीजीवा, धम्मिय पव्वे सुतेवि पावरया।
ण चलंति सुद्ध धम्मा धण्णा किवि पाव पव्वेसु ॥ २६ ॥

अर्थः–जे अत्यन्त पापी जीव हैं, ते धर्म के पर्वनि विषें भी पाप में तत्पर होय हैं। बहुरि जे शुद्ध धर्मात्मा हैं, निर्मल श्रद्धानी हैं, ते कोई भी पाप-पर्व विषें न चलायमान होय हैं। ॥ २९ ॥ आगें धन कें निमित्त के वश तें गुणदोष का कारण दिखावे हैं।

गाथा

लच्छीवि हवइ दुविहा एगा पुरिसाण खवइ गुण रिद्धि।
एगाय उल्लसंतो अपुण्ण पुण्णप्प भावाउ ॥ ३० ॥

अर्थः–लक्ष्मी भी दोय प्रकार होय हैं। एक लक्ष्मी तो पुरुषनि के भोगनि में लगने तें पाप के योग तें सम्यक्त्वादि गुण रूप रिद्धि का नाश करे हैं। बहुरि एक लक्ष्मी दान पूजा में लगने तें पुण्य के योग तें सम्यक्त्वादि गुणनि को हुलसायमान करे हैं। तातें पात्र दानादिक धर्म कार्य ही मैं धन लागे सो सफल है यह तात्पर्य है ॥ ३० ॥ आगे केई दान भी देय हैं, परन्तु कुपात्र के योग तें सो भी निष्फल जाय हैं, ऐसा दिखावे हैं।

गाथा

गुरुणो भट्टा जाया सद्दे थुणिऊण लिंति दाणांइ।
दुण्णिवि अगुणिय सारा दूसम समयम्मि वुड्डंति ॥३१॥

अर्थः–पंचम काल विषें गुरु तो भाट भये, जे शब्दनि तें स्तुति करि के दाननि को लेय हैं। सो ये देने वालो अर लेने वालो

दोनों ही नाहीं जान्या हैं, जिनमत का रहस्य जिनने, ऐसे संसार समुद्र विषें डूबे हैं।

भावार्थः–दाता तो अपना मान पोषणे के अर्थ देय है। अर लेने वाला लोभित होय अनछाते दाता के गुण भाट की ज्यों गाय गाय दान लेय हैं। सो मिथ्यात्व कषाय के पुष्ट होने तें दोनो ही संसार में डूबे हैं। बहुरि पंचम काल कहने का अभिप्राय यहु है जो अन्य मत में ब्राह्मणादिक ऐसे दान लेने वाले तो आगे भी थे, परंतु जिनमत में भी केई भेषी भाटवत् दान लेने वाले भये हैं। सो इस निकृष्ट काल ही में भये हैं, ऐसा जानना ॥ ३१ ॥

गाथा

मिछ पवाहे रत्तो, लोउ परमत्थ जाणओ थोवो।
गुरुणो गारव रसिया सुद्ध मग्गं णिगूहंति ॥ ३२ ॥

अर्थः–मिथ्यात्व के प्रवाह विषें आसक्त जो लोक ता विषें परमार्थ के जानने वाले तो थोड़े हैं। जातें गुरु हैं, ते अपनी महिमा के रसिक तें शुद्ध मार्ग को छिपावे हैं।

भावार्थः–धर्म का स्वरुप गुरुनि के उपदेश तें जानिये हैं। बहुरि जे गुरू कहावे है, ते इस काल विषें अपनी महिमा के आशक्त भये संते यथार्थ धर्म का स्वरुप कहे नाहीं। तातें जिन धर्म की विरलता इस काल में भई है ॥ ३२ ॥

गाथा

सव्वोवि अरह देवो सुगुरु गुरु भणइ णाम मित्तेण।
[illegible]सि सरुव सुहयं पुण्ण विहूणा ण पावंति ॥ ३३ ॥

अर्थः—अरहंत देव अर निर्ग्रंथ गुरु ऐसे तो नाम मात्र करि सर्व ही कहे हैं। परंतु तिनका यथार्थ स्वरूप भाग्यहीन जीव हैं, ते न पावै हैं।

भावार्थः—नाम मात्र करि तो अरहंत देव, निर्ग्रंथ गुरु श्वेतांबरादिक भी कहै हैं। परंतु तिनका यथार्थ स्वरूप जाने नाहीं। तातैं जिनवाणी के अनुसार अरहंतादिक का अवश्य निश्चय करना। इस कार्य में भोला रहना योग्य नाहीं ॥ ३३ ॥

गाथा

सुद्धा जिण आयारया के सिं पावाण हुंति सिरसूंल।
जेसिं तं सिर सूंल के सिं मूढाण ते गुरुणो ॥ ३४ ॥

अर्थः—सुद्ध जिनराज की आज्ञा में तत्पर पुरुष हैं, ते केई पापीनि के सिर सूल हैं ॥ ३४ ॥

भावार्थः—यथार्थ जिन धर्म के आगे मिथ्यादृष्टिनि का मत चलने पावै नाहीं। तातैं इनको ये अनिष्ट भासे ही। बहुरि केइन के ते मूर्ख गुरु नाहीं, जिनके तें सिर सूल हैं। जे जीव मिथ्यादृष्टिन कौं गुरु माने हैं, श्रद्धानी हैं, तिनको ते गुरु यथार्थ मार्ग के लोपने वाले अनिष्ट भासे हैं। जो इनका संयोग जीवनि कै कदाच मत होउ ॥ ३४ ॥

गाथा

हा हा गुरुय अकज्जं, सामी णहु अत्थि कस्स पुक्करिमो।
कह जिण वयणं कह सुगुरु, सावया कह यउदि अकज्जं ॥३५॥

अर्थः—हाय हाय! बड़ा अकार्य है। प्रगट कोउ स्वामी नाहीं हम कौन सें प्रकार करें। जिन वचन तो कौन पुकार हैं, अर सुगुरु कैसे हैं, अर श्रावक कौन प्रकार हैं, यह अकार्य है।

भावार्थः—जिन वचन में तो तिल के तुष मात्र भी परिग्रह रहि
श्रीगुरु कहे हैं। अर सम्यक्तादि धर्म के धारी श्रावक कहे हैं।
बहुरि अबार इस पंचम काल में गृहस्थ से भी अधिक तो परिग्र
रखि हैं। अर आपको गुरु मनावे हैं। बहुरि देव गुरु धर्म र
वा न्याय अन्याय का तो किछूं टीक नाहीं। अर आपको श्राव
माने हैं। सो यहु बड़ा अकार्य है। कोऊ न्याय करने वाल
नाहीं। कौन सों कहिये। ऐसा आचार्य खेद करि कह्या है ॥३५॥

गाथा

सप्पे दिट्ठेणा सइ लोओ, णहु किंवि कोई अक्खेइ।
जो चयइ कुगुरु सप्पं हा मूढ़ा भणइ तंदुट्ठं ॥ ३६ ॥

अर्थः—सर्प को देख करि लोग दूर भागे हैं। तासें तो कोइ
किछु भी कहे नाहीं। बहुरि जो कुगुरु का त्याग करे, तासें हाय
हाय मूढ जन दुष्ट कहे हैं।

भावार्थः—सर्प तें भी अधिक दुखदाई कुगुरु हैं। सो सर्प को त्यागें
तासे तो सब भला कहे। अर कुगुरु को त्यागें तासें मूर्ख जीव
निगुरा कहे हैं। यहु बड़े खेद की बात है ॥३६॥ आगे कोउ
कहे जो सर्प तें भी अधिक दोष कुगुरु में कहा है।

गाथा

सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंताइ देइ मरणाइं।
तो वर सप्पं गहिअं मा कुगुरु सेवणं भद्दं ॥ ३७ ॥

अर्थः—सर्प तो एक ही मरण देय हैं। जो कदाच सर्प डसे तो
एक ही बार मरण होय। बहुरि कुगुरु हैं सो अनंते मरण देय हैं।
कुगुरु के प्रसंग तें मिथ्यात्वादि पुष्ट होने तें निगोदादिक में जीव
अनंतमरण पावे हैं। तातें हे भद्र! सर्प का ग्रहण करना तो भला

परंतु कुगुरु का सेवना भला नाहीं ॥३७॥ आगे लोकनि की अज्ञानता दिखावे हैं।

गाथा

जिण आणा वि चयंता गुरुणो भणिऊण जे ण मज्जंति।
ता किं कीरई लोओछलिओ गड्डरि पवाहेण ॥ ३८ ॥

अर्थः—जिनराज की आज्ञा तो यह जो कुगुरु का सेवन मत करो। ताकौं भी त्याग करि अर जो कुगुरुन कौं गुरु कहि नमस्कार करे हैं। सो लोक कहा करे। गाडरी प्रवाह करि ठिगाया।

भावार्थः—जैसें एक गाडर कुवा में पड़े ताके पीछें और भी पड़ती जाय, कोउ विचारे नाहीं। तैसें अज्ञानी जीव कोउ एक कुगुरु कौं माने है, ताके अनुसार सर्व ही माने है। कोउ गुण दोष का निर्णय करे नाहीं। यह अज्ञान का महात्म्य है ॥३८॥

गाथा

णिट्ठविउण्णो लोओ जइ कुवि मग्गेइ रहिया खंड।
कुगुरुण संग वयणे दक्खिणं हा महा मोहो ॥ ३९ ॥

अर्थ—जो कोई रोटी का टुकड़ा भी मांगे तो यह लोक में दर्शनता रहित गहला बतावे है। अर कुगुरु नाना प्रकार के परिग्रहनि की याचना करे तामें भी प्रवीणपना ठहरावे। सो हाय हाय! यह मोह का महात्म्य है ॥३९॥

गाथा

किं भणिमो किं करिमो ताण हआ ताणा धिट्ठ दुट्ठाणं।
जे दंसिऊण लिंगं खिवंति णरयम्मि मुद्ध जणं ॥ ४० ॥

अर्थः—आचार्य कहे हैं, तिन कुगुरुन से हम कहा कहें। अर कहा

करो। जे लिंग कहिये बाह्य भेष ताहि दिखाय कर भोले जीवनि को नरक विषे खेचें हैं। कैसे हैं ते कुगुरु, नष्ट बुद्धि हैं। कार्य अकार्य के विवेक रहित हैं। बहुरि लज्जा रहित चाहे सो कहें तातै धीठ हैं। बहुरि धर्मात्मान से द्वेष राखने तें दुष्ट हैं।

भावार्थः—कुगुरु अपना मिथ्या भेष तें भोले जीवनि को ठग करि कुगति में ले जाय हैं ॥४०॥

गाथा

कुगुरू विसंसि मोहं जेसिं मोहाइ चंडिमा दठ्ट।
सुगुरूण उवरि भत्ती अइ णिवडा होइ भव्वाणं ॥४१॥

अर्थः—जिनको मिथ्यात्वादि मोह का तीव्र उदय है तिनि के कुगुरुनि की भक्ति वंदना रूप अनुराग होय है। बहुरि वाह्याभ्यंतर परिग्रह रहित जे सुगुरु तिन ऊपर भव्य जीवनि की तीव्र प्रीति होय है।

भावार्थः—जैसी जीव की प्रीति जैसे ही जीव से होय है। तातें जे तीव्र मोही कुगुरु है, तिनसे मोहीन की प्रीति होय है। अर वीतरागी गुरुनि से मंद मोही जीवनि की प्रीति होय है ऐसा जानना ॥ ४१ ॥

गाथा

जह जह तुट्टइ धम्मो, जह जह डुट्ठाण होई अइ उदओ।
सम्मदिट्ठि जियाणं तह तह उल्लसइ खम्मत्तं ॥ ४२ ॥

अर्थः—जैसा जैसा जैन धर्म हीन होय है। अर जैसा जैसा ...नि का उदय होय है। तैसा तैसा सम्यग्दृष्टी जीवनि का ...क्त हुलसायमान होय है।

भावार्थः—इस निकृष्ट काल में, जिन धर्म की विरलता अर मिथ्याद्दष्टीनि की संपदा का उदय देखि करि द्दढ श्रद्धानीनि के यह भावना होय है। जो ये मिथ्याद्दष्टीनि का धर्म भी भला है। उलटा निर्मल श्रद्धान होय है। जो यहु काल दोष है। भगवान ने ऐसे ही कह्या है।

गाथा

जइ जंतु जणणि तुल्ले, अइ उदयं जंण जिणमए होई
तं किट्ठकाल संभव, जिआण अइ पाव माहप्पं ॥ ४३ ॥

अर्थः—जो षट काय जीवनि की रक्षा करने कों माता समान जिन धर्म ता विषें अत्यन्त उदय न होय है। सो इस निकृष्ट काल में उपजे जीवनि का अति पाप का माहत्म्य है।

भावार्थ.—इस निकृष्ट काल में भाग्य हीन जीव उपजे हैं। तिनकों जिन धर्म की प्राप्ति दुर्लभ है। तातें जिन धर्म की विरलता दीसे हैं। किछु धर्म हीन नाहीं।

गाथा

धम्ममि जस्स माया, मिछत्त गाहा उसूत्ति णो संका।
कुगुरुवि करइ सुगुरु दिउ सोवि, सपाव पुण्णोत्ति ॥४४॥

अर्थः—जा जीव के धर्म विषें तो माया कहिये बल है। जो किछु धर्म का अंग सेवे है। तामें आपकी ख्याति, लाभ, पूजा, का आशय राखे है। बहुरि जामें मिथ्यात्व के अर्थ गाथा है। गाथा सूत्रनि का यथार्थ अभि_प्राय तो न जाने है। उल्य. मिथ्या अर्थ ग्रहण करे हैं। बहुरि उत्सूत्र कहिये, सूत्र सिवाय बोलने में जाके शंका नाहीं। यद्वा तद्वा कहे है। बहुरि कुगुरुनि कों दक्षपात के वश तें [illegible] है [illegible]

गाथा

सुद्ध पिहि धम्मराउ बहुइ सुद्धाण संगमे सु अणसो ।
विय असुद्ध संगे तिउ णाण विगलइ अणुदीहं ॥ ४७ ॥

अर्थः-निर्मल श्रद्धावान् सज्जननि के संग होत संते निर्मल आचरण सहित अनुराग बढे हैं। बहुरि सोई अशुद्ध मिथ्यादृष्टीनि का संग होत संते दिन दिन प्रति प्रवीण पुरुषनि का भी श्रद्धान आचरण हीन होय हैं।

भावार्थः-जैसी संगति मिले तैसा ही गुण निपजे हैं। तातैं अधर्मीन की संगति छोड़ि धर्मात्मान् की संगति करनी यह सम्यक्त्व का मूल कारण है ॥ ४७ ॥

गाथा

जो सेवइ सुद्धगुरु अशुद्ध लोयाण सो महा सत्तू ।
तम्हा ताण सयासे वल रहिउ मा वसिज्जाखु ॥४८॥

अर्थः-जो पुरुष बाह्याभ्यंतर परिग्रह रहित शुद्ध गुरुन का सेवक है। सो मिथ्यादृष्टी लोकनि का महाशत्रु है। तातै तिन मिथ्यादृष्टीन के निकट बल रहित मत वसउ।

भावार्थः-जा क्षेत्र में मिथ्यादृष्टीन का घना जोर होय तहां धर्मातमा कौं रहना नाहीं। जिन धर्मीन की संगति रहना योग्य है ॥ ४८ ॥

गाथा

समय विऊ असमत्था सु समत्था तत्थ जिण-मए ।
अबऊ तत्थ णवट्ठइ धम्मो पराहंव लहइ गुणरागी ॥४९॥

अर्थः—जहां जैन सिद्धान्त के ज्ञाता गृहस्थ तो असम... अर अज्ञानी जन सामर्थ्य सहित हैं। तहां धर्म बड़े ... धर्मात्मा जीव पराभय अनादर ही पावे है।

भावार्थः—जहां कोई जिनवाणी का मर्म न जाने तहां र... उचित नाहीं ॥ ४९ ॥

गाथा

जंणं फरइ अइभावं अमग्ग सेवी समुत्थउ धम्मे
ता लद्धं अह कुज्जा ता पीडइ सुद्ध धम्मत्थी ॥ ५० ॥

अर्थः—जो समर्थ होय सो धर्म के विषं अतिभाव (अभिलाषा) नाहीं करे। अर मार्ग विषं लगा हुआ शुद्ध धर्म का अभिलाषी जन पीड़ा कूं प्राप्त होय है।

गाथा

तं जयइ पुरिसरयणं सुगुणड्ढं हेमगिरि वर मव्हायं।
जस्सा सयम्मि सेवइ सुविहि रउ सुद्ध जिणधम्मं ॥५१॥

अर्थः—जाके आश्रय भले आचरण में तत्पर पुरुष निर्मल जिन धर्म को सेवे हैं। सो पुरुषनि विषें रत्न समान उत्तम पुरुष जयवंत हैं। कैसा है सो पुरुष भले सम्यग्दर्शनादि गुणनि का धारी है। बहुरि सुमेरु गिरी समान बड़ा है। सो सम्यक्त्व का अंग है ॥ ५१ ॥

गाथा

सुरतरु चिंतामणिणो अग्घं ण लहंति तस्स पुरिसस्स।
जो सुविहिरय जणाणं धम्माधारं सया देई ॥ ५२ ॥

अर्थः–जो पुरुष शास्त्राभ्यास आदि भले आचरण करने वाले जीवनि कों सदा काल धर्माधार देय हैं। उनके निर्विघ्न शास्त्राभ्यासादि होय तैसी सामग्री मिलावे है। ता पुरुष के मोल कों कल्पवृक्ष अर चिंतामणि पावे हैं। यह पुरुष कल्पवृक्षा दितें भी बड़ा है ॥ ५३ ॥

गाथा

लज्जंति जाणि मोहं सप्पुरिसा निय णाम गहणेण।
पुण तेंसि कित्तिणाउ अह्माण गलंति कम्माई ॥ ५४ ॥

अर्थः–मैं ऐसे जानू हुं के जे पुरुष जिन धर्मिनि की सहाय करे है, तिनके नाम लेने तें मोह लाजे है, मंद पड़े है। बहुरि तिनके गुण गावने ते हमारे कर्म गले हैं।

भावार्थः– जिनधर्मीन के नाम लेने तें जीव का कल्याण होय हैं ॥ ५४ ॥

गाथा

आणा रहियं कोहाइं संजुअं अप्प संसणत्थं च।
धम्मं सेवंताणं णय किती णेय धम्मं च ॥ ५५ ॥

अर्थः–जिनराज की आज्ञा रहित, क्रोधादि कषायनि करि संजुक्त आपकी प्रशंसा के अर्थ धर्म सेवे हैं। तिनके यश कीर्ति न होय है। अर धर्म भी न होय है।

जे जीव आपकी वड़ाई आदि कें अर्थ धर्म सेवे है, तिनकी उलटी कु बड़ाई होय हैं। अर कषाय के होने ते धर्म भी न होय है। तातें निरापेक्ष धर्म सेवना योग्य है ॥ ५५ ॥

गाथा

इयर जण संसणाए धिद्धी उस्सूत भासिए ण भयं।
हा हा ताण णराणं दुहाइ जइ मुणइ जिण णाहो ॥५६॥

अर्थः—जिनके और जीवनि की प्रशंसा के अर्थ जो समस्त जन मोसें भला कहे । याके अर्थ जिनसूत्र कों उलंघि करि बोलने में भय नाहीं । तिन जीवनि कों धिक्कार होउ, धिक्कार होउ। हाय हाय तिन जीवनि तिन जीवनि के पर- भव में जो दुःख होय हैं, ताकों जाने तो केवली जाने ।

भावार्थः—थोड़े से दिननि की मान बड़ाई के अर्थ अन्य मूर्खनि के कहे ते जिनसूत्र उलंघि उपदेश देइ हैं । ते अनंत काल निगोदादिक के दुःख पावे हैं । तातें जिनसूत्र के अनुसार यथार्थ उपदेश देना योग्य है ॥ ५६ ॥

गाथा

उस्सुत भासियाणं, बोही णासो अणंत संसारो ।
पाणव्वएवि धीरा, उस्सुत्तं ताण भासंति ॥ ५७ ॥

अर्थः—जे जीव जिनसूत्र को उलंघि उपदेश देय हैं । तिनकें सम्यग्दर्शनादिक की प्राप्ति रूप जो बोधिका ताका नाश होय हैं । बहुरि अनंत संसार बढ़े हैं । तातें प्राण नाश होतें भी धीर पुरुष हैं ते जिनसूत्र उलंघि न बोले हैं ॥ ५७ ॥

गाथा

मुद्धाण रंजणत्थं अविहिय सं संकथांवि ण करिज्जां ।
किं कुल वहुवो कत्य विगुणति वेसाण चरियाइं ॥ ५८ ॥

अर्थः—मूर्खनि के दिखायवे के अर्थ मिथ्यादृष्टिन के विपरीत आचरन की प्रशंसा कदाचित् भी करनी योग्य नाहीं । जातें कुनयपूर्ह है ते कहा, कहूं भी देवगनि के घातिमानि की प्रशंसा करे हैं ? अपितु नाहीं करे हैं ॥ ५८ ॥

गाथा

जिन आणा भंग भयं भवभय भी आण होय जीवाणं ।
भव भय अनो.रयाणं जिन आणा भंजन कीडा ॥५९॥

अर्थः-जे जीव संसार तें भयभीत हैं । तिनके जिनराज की आज्ञा भंग करने का भय होय है । बहुरि जिनके संसार का भय नाहीं तिनके जिन आज्ञा भंग करना क्रीडा (खेल) है ॥ ५९ ॥

गाथा

को अणु आगं दोतो जंतु असहियाण चेयणा पट्टा ।
घिद्धी कम्माण जउ जिणो विलद्धो अलद्धिए ॥ ६० ॥

अर्थः—जो जिनवाणी के समझने वाले ति की बुद्धि नष्ट होय. अन्यथा आचरण करे तो जिनश शास्त्र का ज्ञान नाहीं । तिनकों कहा दोष दीजिये । तातें कर्मनि के उदय कों धिक्कार होउ धिक्कार होउ । जातें जिन देव पाया भी न पाया, समान होय है ।

भावार्थः—केई जैन कुल में उपजे जीव नाम मात्र जैनी कहावे हैं । परंतु जिन देव का यथार्थ स्वरूप जानते नाहीं । बहुरि केई शास्त्रों अभ्यास भी करे हैं । परंतु तोके उपयोग लगाय देवादिक का निर्णय करते नाहीं । सो यहु तीव्र पाप का ही उदय है । जो निमित्त मिले भी यथार्थ जिनमत न पाया ॥ ६० ॥

गाथा

इयराण वि उवहासं तमजुत्तं भाय कुल पसू
एस पुण कोवि अग्गो, जंहा संसुद्ध धम्मम्मि ॥

भावार्थः—हे भाई जे वड़े कुल में उपजे पुरुष हैं तिनको अ[illegible]
का भी उपहास्य करना युक्त न है। बहुरि यहु कौनसी री[illegible]
जो सुद्ध धर्म विषें हास्य करना।

भावार्थः—हास्य करना तो सर्व ही पाप है। परंतु जे जीव ध[illegible]
विषें हास्य करे हैं तिनको महापाप होय है ॥ ६१ ॥

गाथा

दोसो जिणिदं वयणे, संतोसो जाण निच्छ पावम्मि।
ताणंपि सुद्धहियआ परम हियदा उमिच्छंति ॥ ६२॥

अर्थः—जिनके जिनराज के वचन में तो द्वेष है। अर मिथ्या[illegible]
पाप विषें हर्ष है। तिनको भी निर्मल है चित्त जिनके ऐ[illegible]
सत्पुरुष है, ते परम हित देने कों इच्छें हैं।

भावार्थः—महा मिथ्यादृष्टि कों भी सज्जन तो भला उपदेश दे[illegible]
हैं। फेर वांका भला होना भवितव्य के आधीन है ॥ ६२ ॥

गाथा

अहवा सरल सहावा सुअणा सव्वत्थ हुंति अविकप्पा।
य हुंति दिय भराणवि गुणांति करुणा दुजो हाणं ॥६३॥

अर्थः—अथवा सरल स्वभावी सज्जन पुरुष हैं ते सब विषें [illegible]
समान भाव है। काहू का बुरा न चाहे हैं। जिन के समूह कों
[illegible] के भी [illegible] किसी की [illegible] करे हैं। सो [illegible] सज्जन

। सम्यक्तीन के होय है। सो सम्यग्दर्शन का होना दुर्लभ बतावे हैं ॥ ६३ ॥

गाथा

गिह वावार विमुक्के बहु मुणि लोए विणत्यि सम्मतं ।
आलंवण णिलयाणं सड्ढाणं माय किं भाणिमो ॥६४॥

अर्थः-घर के व्यापार करि रहित ऐसे मुनिन में सम्यग्दर्शन नाहीं। तो घर के व्यापार में तत्पर जे गृहस्थ तिनकी हे भाई हम कहा कहे। तिनके सम्यक्त होना तो महा दुर्लभ है।

भावर्थः-केई जीव आपकौ सम्यक्ती मानि अभिमान करे हैं तिनकों कह्या है। जो पंच महाव्रत के धारी मुनि भी आपा पर के जाने बिना द्रव्य लिंगी ही रहे है। गृहस्थनि की कहा बात। तातैं जिनवाणी के अनुसार तत्वविचार में उद्यमी रहना योग्य है। थोड़ा सा जानि करि आपकों सम्यक्त्वी मानि प्रमादी होना योग्य नाहीं ॥ ६४ ॥

गाथा

ण सयं ण परकोवा जइ जिय उस्सुत्त भासणं विहियं ।
ता वुड्डसिणि ज्झतं णिरत्थयं तव कुडाडोवं ॥ ६५ ॥

अर्थः-जामें किछु आपका भी हित नाहीं ऐसा सूत्र उलंघि वचन कह्या तूनें आरम्या, तो हे जीव तू निस्संदेह संसार समुद्र विषें डूब्या, तेरा तपश्चरणादिक का आडंबर वृथा है।

भावार्थः-कोई जोई तपश्चरणादिक तो करे हैं। अर जिन वचन का श्रद्धान करे हैं। तो समस्त आडंबर वृथा है। तातैं सम्यक् श्रद्धान पूर्वक क्रिया करणो योग्य है ॥ ६५ ॥

गाथा

जह जह जिणिदं वयणं सम्मं परिणमय सुद्ध हियया णं।
तह तह लोय पवाहे, धम्मं पडिहाइण दुच्चरिअं ॥६६॥

अर्थः—सुद्ध है चित्त जिनके ऐसे पुरुपन के जैसा जैसा जिनराज का वचन सम्यक् प्रकार परणमे है । तैसा तैसा लोक व्यवहार में भी धर्मरूप प्रवृत्ति होय है । लोक मूढता रूप खोटे आचरण बूढे हैं ॥ ६६ ॥

गाथा

जाण जिणिंदो णिवसइ, सम्मं हिययम्मि सुद्ध णाणेण।
ताण तिण चुविरायइ, मिच्छा धम्मो इमो सयलो ॥६७॥

अर्थः—जिन पुरुपनि के हृदय विषें निर्मल ज्ञान सहित जिनराज वसे हैं । तिनकों सो यहु समस्त मिथ्यादृष्टीनि का धर्म तृणवत् प्रतिभासे हैं।

भावार्थः—जे जीव वीतराग देव के सेवक हैं । तिनकों सरागीन का कह्या मिथ्या-धर्म तुच्छ भासे हैं । उनका अभ्युदय देखि मन में आश्चर्य न होय हैं । जाने है जो यहु विप मिश्रित भोजन है । वर्तमान में भला दीसे हैं । परिपाक में खोटा है ॥ ६७ ॥

गाथा

लोय— पवाहे समीरण, उद्दंड पयंड लहरीए।
दिढ़ सम्मत्त महाबल, रहिआ गुरुआवि हल्लति ॥६८॥

अर्थः—लोक मूढता रूप उत्कट पवन की प्रचंड लहरनि करि जे दृढ सम्यक्त रूप महाबल करि रहित है । ते भारी पदार्थ भी हलके हैं ।

सब मूढ़तान मैं लोक मूढता प्रबल है। जाकरि बड़े पुरुषनि का भी श्रद्धान शिथिल होय जाय है। जातें जिस तिस उपाय करि जैनमत की श्रद्धा दिढ करणी। अर लोक रीति मैं मोहित न होना। जो ये सर्व लोक करे हैं सो किछु तो या में सार है ऐसा न जानना ॥ ६८ ॥

गाथा

जिणमय अवहीलाए, जं दुक्खं पावणंति अण्णाणी।
णाणीण संभरित्ता, भएण हियय भर थरइ ॥ ६६ ॥

अर्थः—केई अज्ञानी जीव जिन मत की अवज्ञा करे हैं। ताकारि नरकादिक के घोर दुःख पावे हैं। जा दुःख का स्मरण करि ज्ञानीन का हृदय भय करि थर थर कांपे है ॥ ६९ ॥

गाथा

रे जीव अणाणीणं, मिच्छादिट्ठीण णिअसि किं दोसि।
अप्पावि किं ण याणसि, ण जइ काट्ठण्ण सम्मत्तं ॥७०॥

भावार्थः—रे जीव अज्ञानी मिथ्यादृष्टिन के दोषनि कों कहा निश्चय करे है। वेतो मिथ्यादृष्टी ही है। तूं आपही कों क्यों नाहीं जाने। तेरे निश्चल सम्यक्त्व नाहीं। तो तूं भी दोषवान है। तातें जिनवाणी के अनुसार श्रद्धान दृढ करना यह तात्पर्य है ॥ ७० ॥

गाथा

मिच्छत्त भायरंतवि, जे इह वंछंति सुद्ध जिण धम्मं।
ते धत्थावि जरेणय, भुत्तं इंछति खीराइं ॥ ७१ ॥

अर्थः—जे जीव मिथ्यात्व आचरण करते भी निर्मल धर्म को वांछे हैं। ते ज्वरकरि ग्रस्त भी दुग्धादि वस्तु खाने की इच्छा करे हैं।

भावार्थः—केई जीव कुदेवादिक का सेवना आदि मिथ्या आचरण कों तो छोड़े नाहीं। कहे है यह तो व्यवहार है। श्रद्धा तो हमारे जिनमत ही की है तिनकों कह्या है। जो जहां ताईं मिथ्या देवादिक कों सेवा तें रहे हैं, तहां ताईं सम्यक्त्व को अंश भी नाहीं। तातें मिथ्या देवादिक का प्रसंग दूर ही तें त्यागना। तब किछु सम्यक्त्व की वारता करनी यह अनुक्रम है॥ ७१॥

गाथा

जह केइ सुकुल वहुणो, सीलं मइलंति लिंति कुलणामं।
मिछत्त माय रंतवि, वहंति तह सुगुरु के रत्तं॥ ७२॥

अर्थः—जैसें कोई कुलवधु अपना सील कों तो मलिन करि व्यभिचार सेवे अर कुल का नाम लेइ, हम कुलीन हैं, तैसें कुगुरु हैं, ते मिथ्यात्व का आचरण करते संते भी कहे हैं। हम सुगुरनि के शिष्य हैं।

भावार्थः—इस काल में केई श्वेतांबर रक्तांबर आदि जैनमत में भी भेषी भये हैं। ते जिनराज की आज्ञा विरोधि के वस्त्रादि परिग्रह धारते संते भी आपको आचार्यादि पद मानें है। कहे हैं हम गणधरादिक के कुल के हैं। तिनकों कह्या है। जो अन्यथा आचरण करेगा सो मिथ्यादृष्टी ही है, कुल तें किछु साध्य नाहीं। जैसें बड़े कुल की भी स्त्री है। अर व्यभिचार सेवेगी तो व्यभिचारिणी ही है। कुलीन नाहीं॥ ७२॥

गाथा

रसुत मायरंतवि, उवंति अप्पं सुसावगात्तम्मि।
सद्दरोर विंधत्य वितुलंति सरिसिं धणड्ढेहिं ॥ ७३ ॥

र्थः–जे पुरुष जिन सूत्र को उलंघिके आचरण करते संतें भी आपको भले श्रावक पनें में स्थापे हैं। आपको श्रावक मानें हैं। दरिद्र करि ग्रसे भी आपकों धनवाननि करि समानता लहे हैं।

भावार्थः–केई जीवनि के देव गुरु धर्म के श्रद्धानादिक का तो किछु ठीक नाहीं। अर केई अनुक्रम भंग आखंडी धारि आपकों श्रावक माने हैं। ते श्रावक नाहीं। श्रावक तो यथा योग्य आचरण करेगा तब होयेगा ॥ ७३ ॥

गाथा

किवि कुल कम्मम्मि रत्ता किवि रत्त सुद्ध जिणवरमयम्मि।
ाय अंतरम्मि पिच्छह, मूढ़ा णायं ण याणंति ॥ ७४ ॥

अर्थः–केई जीव तो कुलक्रम में आशक्त हैं। जो बड़े करते आये, तैसे करे हैं, किछु निर्णय करतें नाहीं। बहुरि केई जीव शुद्ध जिनराज के मत में आशक्त हैं, जिनवाणी के अनुसार निर्णय करि जिनधर्म को धारे हैं। सो इनका अंतर देखहु बड़ा अंतर है। बाह्य तो एक से दीसे है परंतु परिणामन में बड़ा अंतर है। परंतु मूढ़ जीव है ते न्याय को न जाने हैं। सबको एक से माने हैं।

भावार्थः–निर्णय विना कुल के अनुसार धर्म धारेगा, सो जीव कुल के धर्म छोड़ देइगें। तब आप ही छोड़ देयगा। अर निर्णय करि धर्म धारेगा सो कदाचि न चलेगा। तातें जिनवाणी अनुसार निर्णय करि धर्म धारना सो ही भला है ॥ ७४ ॥

अर्थः–और महापुरुष और अज्ञानी के भक्त औ काठ का मरम इनतें विरक्त ऐसे विवेकी पुरुष इन पूर्वोक्त तें दूर रहि। अर्थात इनकी संगति नकोकरना ऐसा जानना।

गाथा

जे मग्गे जाया सुहेण गछंति सुद्ध मग्गम्मि।
जेहि अमग्गे जाया मग्गे गच्छंति तं चुज्जं ॥ ८३ ॥

अर्थः–जे जीव सुद्ध मार्ग में उपजे हैं ते तो सुख सहित शुद्ध मार्ग में चले ही हैं। परंतु जे अमार्ग में उपजे हैं, अर मार्ग में चले हैं, सो आश्चर्य है।

भावार्थः–जिनके जिनधर्म संतान में चला आया है। ते जिनधर्म में प्रवर्तें सो तो ठीक ही है। परंतु जे अन्य कुल में उपजे जिनधर्म तामें प्रवर्ते है, सो बहु आश्चर्य है, ये अधिक प्रशंसा योग्य है ॥ ८३ ॥

गाथा

मिच्छत सेवगाणं विग्घ सयाइवि वितिणो पावा।
विग्घ लवम्मिवि पडिए दिढ़ धम्माणय भण्णंति ॥८४॥

अर्थः–पापी जीव है ते मिथ्यात्व के सेवकनि के संकड़ा विघ्न होय है, ते भी कहे नाहीं। बहुरि दिढ़ सम्यक्तीनि के विघ्न का अंश भी पूर्व कर्म के उदय तें होय हैं। ताकूं प्रगट कर कहैं हैं।

भावार्थः–कुदेवादिक के सेवने में संकड़ा विघ्न होय ताकूं तो मूर्ख गिने नाहीं। अर धर्म सेवतें पूर्व कर्म के उदय तें कदाचित् किंचित् विघ्न होय ताकूं कहे, धर्म तें विघ्न भया सो ऐसी विपरीत बुद्धि होय है। सो मिथ्यात्व की महिमा है ॥ ८४ ॥

गाथा

जह वद्दलेण सूरं महियल पयडंति णेय तिक्
मिच्छत्तसाय उवये तहेव ण णिजंति जिणदेवं ॥ ८०

अर्थः-जैसे दुर्योग में प्रगट बैरोचन जो सूर्य सो मे
करि आच्छादित लोक न देखे हैं। जैसे ही मिथ्यात्व के
करि जिनदेव को लोक न जाने हैं।

भावार्थः-अरहंत देव का जैसा स्वरूप कह्या तैसा गुण ग्राही
अविरोध परीक्षावान को प्रगट होते हैं परंतु जिनके मिथ्या
का उदय है तिनकूं किछु भासता नाहीं ॥ ८० ॥

गाथा

किं सोवि जणणि जाउ जाउ जणणी ण किं गउवुड्ढी।
जइ मिच्छरउ जाउ, गुणेसु तह मच्छरं वहई ॥ ८१ ॥

अर्थः-जो पुरुष मिथ्यात्व में आसक्त है। अर सम्यग्दर्शनी
गुणनि में मत्सरता धारे हैं, तो वह पुरुष माता के कहा उपज्या ?
अपितु नाहीं उपज्या। अथवा उपज्या तो कहा वृद्धि कों प्राप्त
भया, अपितु नाहीं भया।

भावार्थः-मनुष्य जन्म पारे का फल तो यह है, जो जिनव
अभ्यास करि मिथ्यात्व को तो त्यागना, अर गुणनि को अंगीक
करना। अर जाने यह कार्य न किया, ताके नरभव पाया भी
पाया तुल्य है ॥ ८१ ॥

गाथा

वेसत्ताण वंदियाणय, महाहत्ताण जक्ख तिक्खाण।
भत्ता भर कट्ठाणं, विरयाणं जंति दूरेण ॥ ८२ ॥

गाथा

सम्मत्त संजुयाणं विग्घं पिहु होइ उच्छउ सारित्त
पर मुच्छवंपि मिच्छत संजुअं अइ महा विग्घं ॥ ८५

अर्थः—जे सम्यक्त सहि जीव हैं तिनकें विघ्न भी प्रगट उत्सव माने हैं। बहुरि मिथ्यात्व सहित परम उत्सव भी म विघ्न है।

भावार्थः—धर्मात्मा जीवनि के कोइ कर्म के उदय तें उपसर्ग आवे परंतु तहां निश्चल श्रद्धा रहने तें पापकर्म की निर्जरा है पुण्य के अनुभाग बढे। तब आगामी महा सुख होय। मिथ्या सहित जीव कें कोई पुण्य के उदय तें वर्तमान सुख दीखे, परंतु मिथ्यात्व पाप बंध होने तें आगामी नरकादिक महादुःख निपजे तातें सम्यक्त्व सहित दुःख ही भला। मिथ्यात्व सहित सुख भी भला नाहीं। ऐसा जानना ॥ ८५

गाथा

इंदोवि ताण पणमइ ही लंतोणिय रिद्धि वित्थारं
मरणते विहु पत्ते समत्तं जे ण छंड्डंति ॥ ८६

अर्थः—जे जीव मरण पर्यंत दुःख कों भी प्राप्ति होत सं सम्यक्त्व न छोड़े हैं। तिनकूं इन्द्र भी अपनी ऋद्धि विस्ता कों निंदता संता प्रणाम करे हैं।

भावार्थः—इंद्र भी यह जाने है, कि जिनके दृढ सम्यग्दर्शन है ते ही जीव सास्वता सुख पावे हैं। अर सम्यक्त्व ही अविनाशी ऋद्धि है। जातें सम्यक्त्व आत्मा का स्वरूप है। अर यह ऋ विभूति तो विनाशीक है। दुःख का कारण है। तातें सम्यग्दृष्टी कों नमस्कार करे हैं ॥ ८६ ॥

ति णिय अजीवं तिणंब मुक्खत्थिणो तडण सम्मं ।
इ पुणोवि जीवं समंत्त हरियं कुत्तो ॥ ८७ ॥

र्थः-जे जीव मोक्ष के अर्थी है ते जीवतव्य कों तो तृण को
। त्याग देइ हैं । परंतु सम्यक्त्व तो भी न त्यागे हैं । तातें
वतव्य तो फेर भी पाइये है । अर सम्यक्त्व गया फेर पावना
भ है ।

वार्थः-कर्मोदय के आधीन मरणा जीवना तो अनादि तें होय
है । परंतु जिनधर्म पालना महा दुर्लभ है । तातें प्राणांत में
ो सम्यक्त्व त्यागना योग्य नाहीं ॥ ८७ ॥

गाथा

य विहवावि सविहवा सहिया सम्मत्त रयण राएण ।
मत रयण रहिआ संतेवि धणे दरिद्दंति ॥ ८८ ॥

अर्थः--जे पुरुष सम्यक्त्व रूपी रत्न राज करि सहित हैं,
पुरुष धन धान्यादि विभव करि रहितहैं । तो भी विभव
हित हैं । बहुरि जे पुरुष सम्यक्त्व रहित हैं, ते धन होत संते
ी दरिद्री है ।

भावार्थः-जा जीव के आत्म ज्ञान भया है, ता के धन आदि पर
द्रव्य के होने न होने में हर्ष विषाद नाहीं । वीतराग सुख का
आस्वादी है । तातें सांचा धनवान है । बहुरि अज्ञानी है, सो
पर द्रव्य की वृद्धि हानि में सदा आकुलता है । तातें दरिद्री है,
ऐसा जानना ॥ ८८ ॥

गाथा

जिण पूयण पछावे, जइ कुवि सद्दाण देइ धन कोडी ।
मुत्तूण तं असारं विरयंति जिण पूयं ॥ ८९ ॥

गाथा

जं जिण आणाए तं चिय मण्णइ ण मण्णए सेसं ।
णाइ लोय पवाहे णहुतत्तं सोय तत्तविऊ ॥ ६१ ॥

अर्थः—जो जो जिन आज्ञा विषें कह्या तिस तिस कों तो माने जिन आज्ञा सिवाय और कों न माने । अर लोक रीति विषें मार्थ न जाने सो पुरुष तत्वज्ञानी है ।

भावार्थः—सम्यग्दृष्टि है ते जिन भाषित धर्म कों तो सत्यार्थ ते हैं । अन्य मिथ्यादृष्टी लोकनि की सब रीति मिथ्या ते है ॥ ९१ ॥

गाथा

जण आणाए धम्मो, आणा रहियाण कुड अहम्मुत्ति ।
इय मुणि ऊणं यतत्तं, जिण अणाए कुणह धम्म ॥ ६२ ॥

अर्थः—जिन आज्ञा करि तो धर्म है, अर आज्ञा रहित जीवनि के प्रकट अधर्म है । ऐसा वस्तु स्वरूप जान करि जिन आज्ञा करि धर्म करहु ।

जो जो धर्म-कार्य करे सो जिन आज्ञा प्रमाण करणा । अपनी युक्ति करि मानादि पोषने के अर्थ आज्ञा सिवाय प्रवर्त्तना युक्ति नाहीं । जातें छद्मस्थ अवश्य भूले ही । इहां कोई कहे जो जिन आज्ञा तो श्वेतांवरादिक भी कहे हैं । हम कौन कों प्रणाम करें, ताका उत्तर, जो युक्ति शास्त्र तें अविरोध कुंद कुंदादि महंत आचार्यानि ने यथार्थ आचरण कह्या है, ताकों अंगीकार करना । श्वेतांवरादिकनि ने अपना शिथिलाचार कह्या, सों युक्त शास्त्र ते परीक्षा करें । प्रगट विरुद्ध भासे सो त्यागना । फेरि कोउ कहे, जो दिगंबर शास्त्रनि में भी अन्य अन्य कथन होय, ताकों

कहा करे ? ताका उत्तरः—जो सर्व शास्त्रनि में एकसा क
होय सो तो प्रमाण ही है। अर कहीं विवक्षा के वश तें अ
कथन होय, ताको विधि मिलाय लेय। अर आपके ज्ञान
विधी न मिले तो आपकी भूली माने। बड़े ज्ञानीनि से निर्ण
कर लेय विपेश शास्त्रनि का अभ्यास सम्यक्त्व
कारण है ॥१२॥

गाथा

साहीणे गुरु जोगे जे णहु सुणंति सुद्ध धम
ते धिट्ठ दुट्ठचित्ता अह सुहडा भवभय विहूणा ॥

अर्थः—गुरु जो धर्मनि के स्वरुप का वक्ता ताका संयोग स्व
होते संते भी अभ्यास सम्यक्त्व का मूल कारण है। जे नि
धर्म का स्वरुप न सुने हैं, ते पुरुष दुष्ट हैं। अर धीठ चित्र है
अथवा संसार के भयकरि रहित सुभट हैं।

भावार्थः—धर्मात्मा जीव तो वक्ता का निमित न होय तो
ताका निमित्त कष्ट सें भी मिलाय करि धर्म श्रवण करे हैं। अ
जिनकों स्वयमेव वक्ता का निमित्त मिल्या अर तो भी धर्म
श्रवण न करे हैं, तें आपका अकल्याण करने तें दुष्ट हैं। अर
काहे की लज्जा नाहीं। तातें धीठ हैं। अर संसार का भय होता
तो धर्म श्रवण करता, तातें जानिए है, संसार के भय रहित
सुभट हैं, यहु तर्क निंदा है ॥ १३ ॥

गाथा

सुद्ध कुल धम्म जायवि गुणिणो ण रमंति लिंति जिण
तत्तोवि परंमतत्तं तउवि उवयारउ मुक्खं ॥

अर्थः-सुद्ध कुल धर्म विषें उपजे जे गुणवान पुरुष हैं, ते भी निश्चय करि संसार में नाहीं रमे हैं। जिनराज की दीक्षा ग्रहण करे हैं। तातें भी फेर परम तत्व जो सुद्ध आत्मा ताका ध्यान करे हैं। तातें आत्मा का परम हित रुप मोक्ष पावे हैं।

भावार्थः-जो संसार में सुख होता तो तीर्थंकरादि बड़े पुरुष काहे कों त्यागते। तातें जानिए हैं, संसार में महा दुःख हैं ॥ ९४ ॥

गाथा

वणेमि णारयाउवि, जेंसि दुक्खाइं संमरं ताणं।
भव्वगा जणइ हरिहर रिद्धि समिद्धीवि उव्वासं ॥९५॥

अर्थः-तिन भव्यजीवनी को मैं वर्णूं हूं। धन्य मानूं हूं। जिनके नरक के दुःख समरण करते न के हरिहरादिक की ऋद्धि की वृद्धि भी उदास भाव उपजावे हैं।

भावार्थः-ज्ञानि जीव हैं ते हरिहरादिक की विभूति में भी न राचे हैं। तो और विभूति में कैसे राचें। जातें ज्ञानी जीव बह्वारंभ परिग्रह तें नरकादि दुःखनि की प्राप्ति जाने हैं। केवल सम्यग्दर्शनादिक ही कौं आत्मा के हित माने है ॥ ९५ ॥

गाथा

सिरि धम्मदास संगणिणा, रइयं उवएस माल सिद्धतं।
सव्वेवि समण सड्ढा मण्णंति पठंति पाठंति ॥ ९६ ॥

अर्थ-श्री धर्मदास आचार्य करि उपदेशनि की है माला जा विषें ऐसा सिद्धांत यहु रच्या है। ताहि सर्व ही मुनि या श्रावक माने है। पढे हैं, पढावे

भावार्थः-यह उपदेश आगे धर्मदास आचार्य ने रच्या है सोही मैंने कह्या, किछु कपोल कल्पित नाहीं। याहीं तें प्रमाण भूत हैं। अर सम्यक्त्वादिक के पुष्ट करने तें सबनि का कल्याण कारी है ॥ ९६ ॥

गाथा

तं चेव केइ अहमा छलिया अइ माणमोह भूएण।
किरियाए हीलंता हा हा दुक्खाइ ण गणंति ॥ ९७ ॥

अर्थः-बहुरि ताही शास्त्र कों कोई अधम मिथ्यादृष्टी है, ते आचरण विषें निंदा करे हैं। हाय हाय! निंदा करने तें जे नरकादिक के दुःख होय हैं, तिनकों न गिने हैं। कैसे हैं ते अत्यन्त मान अर मोह रूप राजा करि ठगे हैं।

भावार्थः-जे यथार्थ आचरण तो कर सकते नाहीं। अर आपको महंत बनाए चाहे हैं, मोही हैं तिनको यह यथार्थ उपदेश रुचे नाहीं ॥ ९७ ॥

गाथा

इयराय चक्कुराणवि आणा भंगेवि होइ मरण।
किं पुन तिलोय पहुणो जिणिंद देवाहि देवस्स ॥

अर्थः-चक्रवर्तीन का या और राजानि का भी आज्ञा भंगे मरण का दुःख होय है। तो कहा फेर तीन लोक जो जिनेंद्र देवाधिदेव ता की आज्ञा भंग तें दुःख न हो होय ॥

भावार्थ-केवल अज्ञान तें पदार्थ को अयथार्थ तो भी आज्ञा भंग न कहिये, बहुरि कषाय के योग सो अन्यथा करे, वा कहै, तो अनंत संसारी ...

त्यामत प्रवर्तें हैं । ते जिनाज्ञा न माने ताही तें प्रवर्ते है । तातें धर्मीनि कूं कषाय के वश तें जिनाज्ञा भंग करना योग्य नाहीं । अर जिनकों अपना मानादि पोषणा होय तिनकी कथा नाहीं ॥ ९८ ॥

गाथा

जगगुरु जिणस्स वयणं सयलाण जियाण होय हिय करणं।
ता तस्य विराहणया, कहधम्यो कहणु जीवदया ॥ ९९ ॥

अर्थः-जगत का गुरु जो जिनराज ताका वचन सकल जीवनि का हितकारी है । तातें तिस जिन वचन की विराधना करि, कहो, धर्म कैसे होय, अर जीव दया कैसें होय ।

भावार्थः-केई ढूंढिया आदि हैं ते जिन आज्ञा प्रमाण पूजादिक कार्यनि में हिंसा मान तिनकों उथापि और ही प्रकार धरम वा जीव दया प्ररूपे हैं । तिनकों कह्या है, जो पूजादि कार्यनि में हिंसादिक होते तो भगवान उपदेश काहे कों देते । तातें तेरी समझ में ही दोष है । जिन वचन है सो सर्व ही दयामय है । अर जाकें जिन आज्ञा प्रमाण, नाहीं ताके धर्म है न दया है ॥ ९९ ॥

गाथा

किरियाइ फडाडोवं, अहिय साहंति आगम विहूणं ।
मुद्धाण रंजणत्थं, सुद्धाणं हीलणत्थाए ॥ १०० ॥

अर्थः-जे जीव तपश्चरणादि क्रिया का आडंबर आगम रहित अधिक साधे हैं, सो मूर्ख जीवनि के [illegible]
हैं । अर ज्ञानीनि के निंदा के अर्थ हैं ।

भावार्थ—केई मिथ्यादृष्टी जिनाज्ञा विना अनेक आडंबर हैं, सो मूर्खनि कों उत्कृष्ट भासे हैं। ज्ञानी जाने हैं। यहु सम क्रिया जिनाज्ञा रहित कार्यकारी नाहीं ॥१००॥

गाथा

जो देइ सुद्ध धम्मं सो परमप्पा जयम्मि णहु अण्णो।
किं कप्पद्दुम सरिसो इयर तरु होइ कइयावि ॥१०१॥

अर्थः- जो सुद्ध जिनधर्म का उपदेश देय सो ही लोक में प्रगट पने में परमात्मा हैं जो धन-धान्यादि पदार्थनि का देने वाला नाहीं। जैसे कहीं कल्पवृक्ष समान और वृक्ष कदाचित भी होय हैं। तातें जो धर्म का उपदेश देय सो ही परम हितकारी बहुरि अन्य स्त्री पुत्रादिक कहें ते हितकारी नाहीं। ज मोहादिक के कारण हैं ॥ १०१ ॥

गाथा

जे अमुणिय गुण दोसा, ते कह विवुहाण हुंति मज्झत्था।
अह ते विहु मज्झत्था ता विस अमियाण तुल्लत्तं ॥१०२॥

अर्थः-जे नाहीं जाने हैं गुण दोष जिनने ऐसे मूर्ख जीव हैं ते पंडितनि के ऊपर मध्यस्थ कैसें होउ। क्रोधादि के सेन करे करे ही करे। जातें उनकों पंडितनि के गुणनि की परखि नाहीं अथवा ते मूर्ख भी मध्यस्थ होय तो विष अमृत का समान पना ठहरे सो हैं नाहीं ॥ १०२ ॥

गाथा

मूढं जिणिंद देवो, तव्वयणं गुरुजणं महासयणं।
सेसं पावट्ठाणं, परमप्पाणं च वज्जेमि ॥ १०३ ॥

अर्थः-धर्म की उत्पत्ति के मूल ऐसे तो जिनेंद्रदेव, अर तिनके वचन, अर महा सज्जन स्वभावी निर्ग्रंथ गुरु, ये पदार्थ धर्म की उत्पत्ति के मूलकारण है। बहुरि इन सिवाय अन्य कुदेवादिक पाप का स्थान है। सो आपकों वा परकों मैं बरजूं हूं।

भावार्थः-देव-गुरु-धर्म का श्रद्धान सम्यक्त्व का मूल कारण है। सो आपके वा परकैं दिढ़ करने के अर्थ यहु उपदेश मैं रच्या है। यहु आशय है ॥ १०३ ॥

गाथा

अह्माण राग रोसं, कस्सुवरिं णत्थि अत्थि गुरू विसए।
जिण आणरया गुरुणो, धम्मत्थं सेसवो सरिमो ॥१०४॥

अर्थः-हमारे राग द्वेष कोई के ऊपर नाहीं है। एक कुगुरु विषैं राग द्वेष है। सो राग द्वेष कहा। जे जिनाज्ञा में तत्पर है ते तो हमारे धर्म के अर्थ गुरु है। इन सिवाय अन्य कुगुरुन को मैं त्यागूं हूं।

भावार्थः-कोउ कहे जो तुम्हारे राग द्वेष है। तातैं ऐसा उपदेश करो हो। ताकों कह्या है। जो हमारे लौकिक प्रयोजन के अर्थ उपदेश नाहीं, केवल धर्म के अर्थ कुगुरु सुगुरु का ग्रहण त्याग करावने का प्रयोजन है। जातैं सुगुरु कुगुरु ही सम्यक्त्व मिथ्यात्व के मूल कारण है ॥ १०४ ॥

गाथा

णो अप्पणा पराया, गुरुणो कइआवि हुंति सद्याणं।
जिणवयण रयण मंडण मंडिय [illegible] ॥१०५॥

अर्थः-श्रद्धावान जीवनि के [illegible] भी

भी न होय है । जिनवचन रूप रत्ननि के आभूषण करि मं
है । ते सर्व ही सुगुरु है ।

भावार्थ:—इस कलिकाल में केई जीव ऐसे माने हैं । जो अमुक
गछ के वा अमुकी संप्रदाय के तो हमारे गुरु है । बाकी औरनि
के गुरु है । हमारे नाहीं सो ऐसा एकांत जिनमत में नाहीं
जिनमत में तो जे यथार्थ आचरण के धारी हैं, ते सर्व ही गुरु
हैं ॥ १०५ ॥

गाथा

वलि किज्जामो सज्जण जणस्स सुविसुद्ध पुण्ण जुत्तस्स ।
जस्सलहु संगमेणवि सुधम्म बुद्धि समु ल्लसइ ॥१०६॥

अर्थ:—निर्मल पुण्य करि युक्त जो सज्जन पुरुष ताकी मैं बलि
जाऊ हूं । प्रशंसा करु हूं । जाके संगम करि शीघ्र ही निर्मल
धर्म बुद्धि हुलसायमान होय है ।

भावार्थ:—मिथ्यात्व रहित सम्यक्तादि धर्म की इच्छा है,
साधर्मी विशेष ज्ञानीनि की संगति करो । जातें संगति मैं
गुण दोषनि की प्राप्ति देखिये हैं ॥ १०६ ॥

गाथा

अज्जवि गुरुणो गुणिणो, सुद्धा दीसंति लडयडाकेवि ।
यहुजिण वल्लह सरिसो पुणोवि जिण वल्लहो चेव ॥११०॥

अर्थ:—अवार भी केई गुणवान, निर्दोष गुरू दीसे हैं कैसे हैं,
जिनराज समान हैं । नग्न मुद्रा के धारी हैं । बहुरी केवल बाह्य
लिंग ही नाहीं, तो कैसे हो ? जिनराज ही है इष्ट जिनको
ऐसे हो ।

भावार्थः-जिन भाषित धर्म के धारी है । केवल नग्न परम हंसादिक की ज्यों नाहीं । इहां कोऊ कहे जो अवार इस क्षेत्र में मुनि तो दीसते नाहीं, इहां कैसे कहे । ताका उत्तर, जो तुम्हारी ही अपेक्षा तो वचन नाहीं । वचन तो सबनि की अपेक्षा है । सो कोई के प्रत्यक्ष होय होगें । जातें दक्षिण दिसा में अवार भी मुनिन का सद्भाव शास्त्र में कह्या है ॥ १०७ ॥

गाथा

एणेवि सुगुरू जिणवल्लहस्स केसिण उल्लसइ सम्मत्तं ।
हकह दिण मणि ते अं अलुआणं हरइ अंधत्तं ॥१०८॥

अर्थः-जिनराज है इष्ट जिनके ऐसे निर्ग्रन्थ गुरु का उपदेश त संते भी कोई जीवनि के सम्यक्त्व हुलसाय मान न होय है । थवा सूर्य का तेज घूघूनि का अंधपना कैसें हरे ? नाहीं हरें । भावार्थः-जाका भला होनहार नाहीं, ताकों सम्यक् उपदेश न रुचे । वाकों तो विपर्यय ही दीसे । आगे मिथ्यादृष्टी जीवनि की मूर्खता दिखावे हैं ॥ १०८ ॥

गाथा

तिहुवण जणंमरंतं दिट्ठूण णिअंति जेण अप्पाणं ।
विरमंति ण पावाउ धिद्धीधिट्ठत्तणं ताणं ॥ १०९ ॥

अर्थः-तीन लोक के जीव मरते देखि के जे आतमा कों नाहीं अनुभवे है । अर पाप तें उदास न होय है । तिनके धीठ पने को धिक्कार होऊ ।

भावार्थः-संसार में पर्याय दृष्टि ... स्थिर
नाहीं । तातें शरीरादिक के ... आतम

कल्याण न करणा यह मूर्खता है ॥ १०९ ॥

गाथा

सोएण कंदिउणं कट्टे ऊणं सिरं च उर
अप्पं खिवंति णरये, तंपिहु धिद्धी, कुणेहत्तं ॥ ११

अर्थः—जे जीव गये पदार्थ का शोक करि शब्द सहित
करि कें अर मस्तक छाती कूट करि आपकों नरक विषें पटकें
तिस खोटें स्नेह को भी धिक्कार है ॥ ११० ॥

गाथा

एगंपिय मरणदुहं अण्णं अप्पावि खिप्पए णरये।
एगं चमाल पडनं अण्णं च लठेण सिरघाउ ॥ १११ ॥

अर्थः—एक तो मरण का दुःख अर दूजा आत्मा नरक विषें ल
किये, सो यह कैसा कार्य है । जैसा एक तो ऊपर से पड़ना, अ
दूजा लाठी से सिर फूटे तैसा है ।

भावार्थ.—जो पर्यायवर्ती होय गई सो फेर आवती नाहीं, ऐ
वस्तु स्वरूप है । तातें शोक करना है, सो वर्तमान में दुःख स्वर
है । अर आगामी नरकादिक दुःख का कारण है । किछु शोक
में सार नाहीं ॥ १११ ॥

आगें जिनके शोकादिक न होय हैं, ऐसे ज्ञानी जीव प्राप्त
दुर्लभ हैं । ऐसा कहे हैं ।

गाथा

भवइ दुगमरागे धम्मत्थी सुगुरु सावया दुलहा।
णाम गुरु णाम सड्ढा सराग दोसा बहु अत्थि ॥ ११२ ॥

अर्थः-अबार दुःखमा काल विर्षे धर्मार्थी गुरु श्रावक दुर्लभ हैं। राग द्वेष सहित नाम मात्र गुरु अर नाम मात्र श्रावक बहुत हैं।

भावार्थः-इस निकृष्ट काल विर्षे परमार्थ धर्म सेवना दुर्लभ है। लौकिक प्रयोजन के अर्थ धर्म सेवे हैं, सो नाम मात्र धर्म सेवे है। धर्म सेवन का गुण जो वीतराग भाव ताकों न पावे है। सो ऐसे जीव घने ही है ॥ ११२ ॥

गाथा

कहियंवि सुद्धधम्मं, काहिवि धण्णाण जणइ आणंदं।
मिच्छत्त मोहियाणं होइ रइ मिच्छ धम्मेसु ॥ ११३ ॥

अर्थः-कह्या भया जो शुद्ध जिन धर्म का स्वरुप सो केई भाग्यवान जीवनि के आनंद उपजावे है। अर मिथ्यात्व करि मोहित जीव है, तिनकी प्रीति मिथ्याधर्म विर्षे होय है ॥ ११३ ॥

गाथा

इक्कवि महादुक्खं जिणवयण विऊण सुद्ध हिययाणं।
जं मूढा पावाइं, धम्म भणिऊण सेवंति ॥ ११४ ॥

अर्थः-शुद्ध है चित्त जिनके ऐसे जिनवचन के ज्ञातानि के एक ही महादुःख है। जो मूढ जीवधर्म का नाम लेय करि पापनि को सेवे हैं।

भावार्थः-केई जीव व्रतादिक का नाम करि रात्रि-भोजनादि करे हैं। ते धर्म का नाम लेय हिंसादि पाप करे हैं, तिनको मूढ़ता देखि ज्ञानिन के करुणा उपजे हैं ॥ ११४ ॥

गाथा

पोवा महाणु-भावा, जे जिण-वयणे रमंति संविग्गा।
तत्तो भव भव भोया, सम्मं सत्तीइ पालंति ॥ ११५ ॥

अर्थः—ऐसे महानुभाव पुरुष थोड़े हैं। जे वैराग्य में तत्पर संते जिनवचन विषें रमे हैं। बहुरि तिस जिनवचन के ज्ञा संसार सें भयभीत भये संते सम्यक्त्व कों शक्ति करि पाले है अनेक खोटे कारण मिलें तो भी सम्यक्त्व विचार रुप शक्ति प्रगट करि श्रद्धातें न चिगे हैं। ऐसे जीव होना दुलर्भ है॥११५

गाथा

सव्वं गंपिहु सग डं जह ण चलइ इक्क वडहिला रहिअं
तह धम्म फडाडोवं ण फलइ समत्त परिहीणं ॥ ११६ ॥

अर्थः—जैसें प्रगट पने सर्व अंग सहित गाड़ा भी एक धुर रहित चाले नाहीं। तैसे धर्म का बड़ा आडम्बर भी सम्यक्त्व रहित फले नाहीं। तातें सम्यक्त्व सहित व्रतादि धर्मधारना योग्य है यह तात्पर्य है ॥ ११६ ॥

गाथा

ण मुणंति धम्मतत्तं सत्थं परमत्थ गुण हियंअहियं
बालाण ताण उवरि कह रोसो मुणिय धम्माणं ॥११७

अर्थः—जे अज्ञानी जीवधर्म के स्वरुप कों या परमार्थ गुणरु हित कूं वा अहित कों नाहीं जाने है। तिनके ऊपर जान्या है धर्म का स्वरुप जिनने, ऐसे ज्ञानि जीवनि के रोस कैसे होय। ज्ञानी जाने है जो ये मिथ्यादृष्टि धर्म का स्वरुप जाने नाहीं। न जाने, तातें काहे का रोग, ऐसे मध्यस्थ रहे हैं ॥ ११७ ॥

गाथा

अप्पावि जाण वयरी तेसिं कह होय परजिये करना।
चोराण वंदियाणय दिट्ठ तेणय मुणेयव्वं ॥ ११८ ॥

अर्थः—जिन जीवनिके आपका आत्मा ही वैरी है, मिथ्यात्व कषायनि करि आपका घात आप ही करे है। तिनके परजीव की

कैसे होय। जैसें घोर बंदीखाने में पड़े जीव हैं, ते औरनि कैसें सुखी करे, कैसे छुड़ावे ॥ ११८ ॥

गाथा

रज्ज धणणाई, कारण भूया हवंति वावारा।
विहुं अइ पाव जुया धण्णा छंडंति भवभीया ॥११९॥

अर्थः—जे राज्य धनादिक के कारणभूत व्यापार हैं, ते निश्चय-करि अत्यन्त पाप सहित हैं। तातें जे संसार तें भयभीत भये संते तिन व्यापारनि कों त्यागे हैं, ते धन्य हैं।

जिनमत में कोई धनादिक अधिक राखि आपको बड़ामाने सो नाहीं, इहां तो धनादिक के त्याग की महिमा है, ऐसा जानना ॥ ११९ ॥

गाथा

वीयादि सत्तर हिया, धण सयणादीहि मोहियालुद्धा।
सेवंति पावकम्मं, वावारे उयर भरणट्ठा ॥ १२० ॥

अर्थः—जे जीव वीर्यादिक सत्त्व रहित है, अर धन अर पुत्रादि स्वजननि करि मोहित है, लोभी है। उदर भरने के अर्थ व्यापार विषें पाप कर्म सेवे हैं ॥

भावार्थः-जे जीव शक्ति-हीन हैं, मोही हैं, उदर भरने कूं पाप रूप व्यापारनि में राचे हैं। अर जो शक्तियान हैं ते न राचे हैं ॥ १२० ॥

आगें उदर भरने के अर्थ पापरुप अधम है ही, परंतु तिन ते भी अधम हैं, तिनकी निंदा करे हैं ॥

गाथा
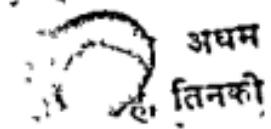
तइ आहमाण अहमा, फारण रहिया अणाण गव्वे
जे जंपंति उस्सुत्तं, तेसिं धिद्धित्थु पंडित्ते ॥ १२

अर्थः—जे जीव कारण रहित अज्ञान के गर्व करि सूत्र उलधि करि बोले हैं, ते पापीन तें भी अत्यन्त पापी हैं। पंडित पने में धिक्कार होउ ॥ १२१ ॥

भावार्थः—लौकिक प्रयोजन के अर्थ पाप करे हैं। ते तो हो हैं, परंतु जे विना प्रयोजन पंडितपने के गर्व अन्यथा करे हैं, ते महापापी हैं। जातें कषाय के वश तें एक अक्षर जिनवाणी का अन्यथा कहे, तो अनंत संसारी होय, ऐसा है ॥ १२१ ॥

गाथा

ज वीर जिणस्स जिउ, मरीई उस्सुत्त लेस देसणऊ।
सायर कोडाकोडिं, हिंडिउ भीम भव रण्णे ॥ १२२ ॥

गाथा

ता जइइमंवि वयणं वारं वारं सुणंतु समयम्मि।
दोसेण अवगणित्ता, उस्सुत्त, वयाई सेवति ॥१२३॥

गाथा

ताण कहं जिणधम्मं, कहणाणं कह पहाण वेरगं।
कूडा भिमाण मंडिय, णडिआ वुडंति णरयम्मि ॥१२४॥

अर्थः—जो महावीर स्वामी का जीव मारीचि जैन सूत्र उलंघि करि उपदेश करया, ता करि अति भयानक भव वन विषै कोड़ा कोड़ी सागर भ्रम्या ॥ १२२ ॥

र्थः-तातें जो ऐसा वचन शास्त्र में बारंबार सुन के दोसनि
ों नाहीं गिना, ता करि मिथ्या सूत्र के वचननि को सेवे हैं
। १२३ ॥

र्थः-तिनकें जिन धर्म कैसें होय ? अर सम्यग्ज्ञान कैसें
होय ? अर उत्तम वैराग्य कैसें होय ? ते झूठे अभिमान करि
आपको पंडित माने ते नरक विषें डूबे हैं ॥ १२४ ॥

भावार्थः-जे जिन आज्ञा भंग करे हैं। अपनी पंडिताई करि
अन्यथा कहे हैं, ते जिन धर्मी नाहीं। मिथ्यात्व करि नरकादिक
ही के पात्र हैं ॥ १२४ ॥

गाथा

मा मा जंपह बहुअं, जे बद्धा चिक्कणेहिं कम्मेहिं।
सव्वेसिं तेसिं जइ, इहिं उवएसो महा दोसो ॥ १२५ ॥

अर्थः-तुम बहुत मत कहो, मत कहो, जे चीकने कर्मनि करि
बंधे हैं, तिन सबनि के लोक विषें हितो उपदेश हैं। सो महा
दुःख रुप हैं।

भावार्थः-जिन जीवनि के तीव्र मिथ्यात्व का उदय है तिनकों
वारंवार उपदेश देने करि किछु साध्य नाहीं। ते तो उलटे
विपरीत परिणमे हैं। ऐसा वस्तु स्वरुप जानि मध्यस्थ रहना
योग्य है ॥ १२५ ॥

गाथा

हिअयम्मि जे कुसुद्धाते किं बुज्झंति धम्मवयणेहिं।
ता ताणकये गुणिणो णिरत्थयं दमहि अप्पाणं ॥ १२६ ॥

अर्थः-जे जीव हृदय में अशुद्ध है। मिथ्या भाव करि मलिन
हैं, ते कहा धर्म वचननि करि समझे हैं ? अपितु नाहीं समझे

हैं । तातैं तिनको समझावने कै अर्थ गुणवान पुरुष हैं ते निरर्थ आत्मा कों दमे हैं, कष्ट करे हैं ।

भावार्थः–विपर्यस्त कों उपदेश देने में किछु सार नाहीं । ता विपर्यस्त सें मध्यस्थ रहना ही भला है । ऐसा जानना ॥१२६॥

गाथा

दूरे करणं दूरंपि साहणं तह पभावणा दूरे।
जिणधम्म सद्दहाणं, तिक्खा दुक्खइ णिट्ठवई ॥१२७॥

अर्थः–जिन धर्म का आचरण करना, साधन करना, प्रभावना करणी, ये तो दूर ही रहो, जिन धर्म की श्रद्धा करना ताही तै तीव्र दुःखनि का नास करे हैं ।

भावार्थः–व्रतादिक तो दूर ही रहो, एक सम्यक्त्व होते हीं नरकादिक दुःखनि का अभाव होय है । तातैं जिन धर्म धन्य है ॥ १२७ ॥

आगें जिनमत तें धर्म प्रीति होय ऐसें श्रीगुरुनि के संग की भावना गावे हैं ।

गाथा

कइया होही दिवसो, जइआ सुगुरुण पा[illegible]
उस्सूत लेस विसलव, रहिऊण सुणेसु जिणधम्मं ॥१

अर्थः–यह दिवस कब होयगा जब सुगुरुन के चरणन के में जिन धर्म को सुनूंगा । कैसे भया संता सुनूंगा ? [illegible] लेस कहिये अंश सोइ भया विष का कण ता करि [illegible] संता सुनूंगां ॥ १२८ ॥

गाथा

दिट्ठावि केवि [illegible] [illegible] ण रमंति मु[illegible]
केवि पुण अ[illegible]
वल्लहो

हैं। तातैं तिनको समझावने के अर्थ गुणवान पुरुष हैं ते निरर्थक आत्मा कों दमे हैं, कष्ट करे हैं।

भावार्थः–विपर्यस्त कों उपदेश देने में किछु सार नाहीं। तातैं विपर्यस्त सैं मध्यस्थ रहना ही भला है। ऐसा जानना ॥१२६॥

गाथा

दूरे करणं दूरंपि साहणं तह पभावणा दूरे।
जिणधम्म सद्दहाणं, तिक्खा दुक्खइ णिट्ठवई ॥१२७॥

अर्थः–जिन धर्म का आचरण करना, साधन करना, प्रभावना करणी, ये तो दूर ही रहो, जिन धर्म की श्रद्धा करना ताही तैं तीव्र दुःखनि का नास करे है।

भावार्थः–व्रतादिक तो दूर ही रहो, एक सम्यक्त्व होते हीं नरकादिक दुःखनि का अभाव होय है। तातैं जिन धर्म धन्य है ॥ १२७ ॥

आगें जिनमत तैं धर्म प्रीति होय ऐसें श्रीगुरुनि के संगम की भावना भावे हैं।

गाथा

कइया होही दिवसो जइआ सुगुरुण पायमूलम्मि।
उस्सूत लेस विसलव रहिऊण सुणेसु जिणधम्मं ॥१२८॥

अर्थः–वह दिवस कब होयगा जब सुगुरुन के चरणन के निकट मैं जिन धर्म को सुनूंगा। कैसे भया संता सुनूंगा ? उत्सूत्र का लेस कहिये अंश सोइ भया विष का कण ता करि रहित भया संता सुनूंगां ॥ १२८ ॥

गाथा

दिट्ठावि केवि गुरुणो, हियए ण रमंति मुणिय तत्ताणं।
केवि पुण अदिट्ठा च्चिय, रमंति जिण वल्लहो जेम ॥१२९॥

अर्थः-केई गुरु देखे संते भी तत्व ज्ञानीनि के हृदय में न रमे हैं। अर केइ गुरु अदृष्द है तोभी तत्त्वज्ञानी पुरुषों के हृदय में जैसे जिनेन्द्र भगवान प्रिय हैं तैसे रमते हैं।

भावार्थः-जो लोक में गुरू कहावे है, अर गुरू पने के गुण नाहीं, ते तत्वज्ञानीनि कों न रुचे हैं। बहुरि केई गुरु अदृष्ट हैं। (देखने में न आवे हैं) तो भी तत्वज्ञानीनि के हृदय में रमे हैं। ज्ञानी तिन का परोक्ष स्मरण करे हैं। जैसे जिन है वल्लभ कहिये इष्ट जिनके ऐसे गणधरादिक अबार प्रत्यक्ष नाहीं, तो भी ज्ञानीनि के हृदय में रमे हैं ॥ १२९ ॥

आगें कोउ कहे, जो हम तो कुगुरून कों ही सुगुरु समान मानि करि पूजेगें। गुणनि की परीक्षा करि कहा करणा है। ताका निषेध करे हैं।

गाथा

अइया अइ पाविट्ठा, सुद्ध गुरु जिणवरिंद तुल्लंति।
जो इह एवं मण्णइ, सो विमुहो सुद्ध धम्मस्स ॥ १३० ॥

अर्थः-अबार भी अति पापी हैं परिग्रहादिक के धारी कुगुरु हैं ते भी शुद्ध गुरु अर जिनराज के समान है। या प्रकार जो इस लोक में माने हैं, सो सुद्ध धर्म ते विमुख हैं।

भावार्थः-जाके सुगुरु कुगुरु में विवेक नाहीं, सो मिथ्यादृष्टी है ॥ १३० ॥

गाथा

जं तं वंदसि पुज्जसि, वयणं होलेसि तस्स राएण।
ता कह वंदसि पुज्जसि जिणवाय ट्ठिविणो मुणसि ॥१३१॥

अर्थः-जाकों तू प्रीति करि वंदे हैं, पूजे हैं, अर ताही के वचन

हैं। तातें तिनको समझायने के अर्थ गुणवान पुरुष हैं ते निरर्थक आत्मा कों दमे हैं, कष्ट करे हैं।

भावार्थः-विपर्यस्त कों उपदेश देने में किछु सार नाहीं। तातें विपर्यस्त सें मध्यस्थ रहना ही भला है। ऐसा जानना ॥१२६॥

गाथा

दूरे करणं दूरंपि साहणं तह पभावणा दूरे।
जिणधम्म सद्दहाणं, तिक्खा दुक्खइ णिट्ठवई ॥१२७॥

अर्थः-जिन धर्म का आचरण करना, साधन करना, प्रभावना करणो, ये तो दूर ही रहो, जिन धर्म की श्रद्धा करना ताही तें तीव्र दुःखनि का नास करे है।

भावार्थः-व्रतादिक तो दूर ही रहो, एक सम्यक्त्व होते हीं नरकादिक दुःखनि का अभाव होय है। तातें जिन धर्म धन्य है ॥ १२७ ॥

आगें जिनमत तें धर्म प्रीति होय ऐसें श्रीगुरुनि के संगम की भावना भावे है।

गाथा

कइया होही दिवसो, जइआ सुगुरुण पायमूलम्मि।
उस्सूत लेस विसलव, रहिऊण सुणेसु जिणधम्मं ॥१२८॥

अर्थः-वह दिवस कव होयगा जब सुगुरुन के चरणन के निकट मैं जिन धर्म को सुनूंगा। कैसे भया संता सुनूंगा ? उत्सूत्र का लेस कहिये अंश सोइ भया विष का कण ता करि रहित भया संता सुनूगां ॥ १२८ ॥

गाथा

दिट्ठावि केवि गुरुणो, हियए ण रमंति सुणिय तत्ताणं।
केवि पुण अदिट्ठा चिय, रमंति जिण वल्लहो जेम ॥१२९॥

अर्थः–केई गुरु देखे संते भी तत्व ज्ञानीनि के हृदय में न रमे हैं। अर केइ गुरु अदृष्द हैं तोभी तत्त्वज्ञानी पुरुषों के हृदय में जैसे जिनेन्द्र भगवान प्रिय है तैसे रमते है।

भावार्थः–जो लोक में गुरू कहावे है, अर गुरू पने के गुण नाहीं, ते तत्वज्ञानीनि कौं न रुचे है। बहुरि केई गुरु अदृष्ट हैं। (देखने में न आवे हैं) तो भी तत्वज्ञानीनि के हृदय में रमे हैं। ज्ञानी तिन का परोक्ष स्मरण करे हैं। जैसे जिन् है वल्लभ कहिये इष्ट जिनके ऐसे गणधरादिक अबार प्रत्यक्ष नाहीं, तो भी ज्ञानीनि के हृदय में रमे हैं ॥ १२९ ॥

आगें कोउ कहे, जो हम तो कुगुरून कौं ही सुगुरु समान मानि करि पूजेगें। गुणणि की परीक्षा करि कहा करणा है। ताका निषेध करे हैं।

गाथा

अइया अइ पाविट्ठा, सुद्ध गुरु जिणवरिंद तुल्लंति।
जो इह एवं मण्णइ, सो विमुहो सुद्ध धम्मस्स ॥ १३० ॥

अर्थः–अबार भी अति पापी हैं परिग्रहादिक के धारी कुगुरु हैं ते भी शुद्ध गुरु अर जिनराज के समान हैं। या प्रकार जो इस लोक में माने है, सो सुद्ध धर्म ते विमुख हैं।

भावार्थः–जाके सुगुरु कुगुरु में विवेक नाहीं, सो मिथ्यादृष्टी है ॥ १३० ॥

गाथा

जं तं वंदसि पुज्जसि वयणं हीलेसि तस्स राएण।
ता कह वंदसि पुज्जसि जिणवाय ट्ठिपिणो मुणसि ॥१३१॥

अर्थः–जाकों तू प्रीति करि वंदे हैं, पूजे हैं, अर ताहीं के वचन

की हीलना करे हैं, सो जिनराज के वचन में कह्या भी न माने हैं। तो कहा वंदे है पूजे हैं।

भावार्थः–कोई जीव बाह्य जिनराज को पूजा वंदना तो बहुत करे, अर ताके वचन को माने ही नाहीं तो ताको वंदना पूजा कार्य-कारी नाहीं ॥ १३१ ॥

गाथा

लोएवि इमं सुणियं आराहिज्जंतं ण कोविज्जो।
मण्णिज्ज तस्सवयणं जइ इच्छसि इच्छियं काओ ॥१३२॥

अर्थः–लोक में भी ऐसा सुनिये है जो जाकूं आराधिये, सेइये. ताकों कोपित न कीजिये जो वांछित करने कों चाहे है। तो ताका वचन मानि।

भावार्थः–लोक में भी यहु प्रसिद्ध है जो कोई राजादिक कों सेवे अर तासें फल चाहे तो ताको आज्ञा प्रमाण है, सो करे। अर सेवा तो करे, अर आज्ञा ताकी न माने तो फल मिले नाहीं। तैसे हीं जिनदेव को आराधे है, तो तिनकी आज्ञा प्रमाण करना। कदाच आज्ञा प्रमाण न करेगा तो आराधना का फल मोक्षमार्ग पावना दुर्लभ है ॥ १३२ ॥

गाथा

दूसम दंडे लोए, दुक्ख सिठ्टम्मि दुठ्ट उदयम्मि।
धण्णाण जाण ण चलइ सम्मत्तं ताण पणमामि ॥१३३॥

अर्थः–दुःखी है श्रेष्ठ पुरुष जंगी लोक जामें, अर दुष्टनि का है उदय जा विषें, ऐसे पंचम काल के दंड सहित लोक विषें जिन भाग्यवाननि का सम्यक्त्व न चले है तिनकों मैं नमस्कार करूं हूं।

भावार्थः–इस निकृष्ट काल में सम्यक्त विगड़ने के कारण अनेक बन रहे हैं। तिनमें भी जो चलित न होय, सो धन्य हैं ॥१३३॥

आगें गुरुनि की परिक्षा करने का उपाय कहे हैं ।

गाथा

णियमइ अणुसारेण व्यवहार णयेण समय सुद्धीए ।
कालक्खेत्तणु माणे परिक्खउ जाणिउ सुगुरु ॥ १३४ ॥

अर्थः–अपनी बुद्धि के अनुसार व्यवहार नय करि सिद्धान्त की शुद्धी करि काल क्षेत्र के अनुमान करि परीक्षा करि कें सुगुरन को जानहु ॥ १३४ ॥

भावार्थः–रत्नत्रय का साधकपना साधू का लक्षण है, सो निश्चय दृष्टि करि अंतरंग तो दीसता नाहीं । परंतु व्यवहारनय करि सिद्धान्त में महाव्रतादि आचरण कह्या है । ता करि परखना जो इन में पाइये है, ते गुरु है । इनमें न पाइये, ते कुगुरु हैं । बहुरि ऐसे काल क्षेत्र में गुरुन का आचरण बने है, ऐसे काल क्षेत्र में न बने है, ऐसा विचार करि गुरुन के योग्य क्षेत्र काल में जहां पंच महाव्रतादि दीसे ते गुरु हैं । अर गुरुन योग्य क्षेत्र काल नाहीं, तहां तिष्ठे, अर पंच महाव्रतादि जिन में पाइये नाहीं अर आपको गुरु माने, ते कुगुरु हैं । ऐसा जानना ॥ १३४ ॥

गाथा

तहविहु णिय जडयाए कम्म गुरु त्तस्सणेव वीससिमो ।
धण्णाण कयत्थाणं सुद्ध गुरु मिलइ पुण्णेण ॥ १३५ ॥

अर्थः–ऐसें परिक्षा करे हैं, तो भी कर्म के तीव्र उदय तें अपनी अज्ञानता करि गुरुन का हम विश्वास नाहीं करे हैं, निश्चय नाहीं करे हैं, सो भाग्यवान कृतार्थ जीवनि कों पुण्य के उदय करि सुद्ध गुरु मिले हैं ।

सांचे गुरु का मिलना सहज नाहीं । जाका भला

की हीलना करे हैं, सो जिनराज के वचन में कह्या भी न हैं। तो कहा वंदे है पूजे हैं।

भावार्थः–कोई जीव वाह्य जिनराज की पूजा वंदना तो करे, अर ताके वचन को माने ही नाहीं तो ताकी वंदना कार्य-कारी नाहीं ॥ १३१ ॥

गाथा

लोएवि इमं सुणियं आराहिज्जंतं ण कोविज्जं
मण्णिज्ज तस्सवयणं जइ इच्छसि इच्छियं काओ ॥१३

अर्थः–लोक में भी ऐसा सुनिये है जो जाकूं आराधिये, से ताकों कोपित न कीजिये जो वांछित करने कों चाहे हं। ताका वचन मानि।

भावार्थः–लोक में भी यहु प्रसिद्ध है जो कोई राजादिक कों अर तासें फल चाहे तो ताकी आज्ञा प्रमाण है, सो करे। सेवा तो करे, अर आज्ञा ताकी न माने तो फल मिले नाहीं तैसे हीं जिनदेव को आराधे है, तो तिनकी आज्ञा प्रमाण करना कदाच आज्ञा प्रमाण न करेगा तो आराधना का फल मोक्षमा पावना दुर्लभ है ॥ १३२ ॥

गाथा

दूसम दंडे लोए, दुक्ख सिठ्टम्मि दुठ्ट उदयम्मि
धण्णाण जाण ण चलइ सम्मत्तं ताण पणमामि ॥१३३

अर्थः–दुःखी है श्रेष्ठ पुरुष जैनी लोक जामें, अर दुष्टनि का उदय जा विषें, ऐसे पंचम काल के दंड सहित लोक विषें जि भाग्यवाननि का सम्यक्त्व न चले है तिनकों में नमस्कार करूं हूं।

भावार्थः–इस निकृष्ट काल में सम्यक्त विगड़ने के कारण अनेक बन रहे हैं। तिनमें भी जो चलित न होय, सो धन्य है ॥१३३॥

आगें गुरुनि की परिक्षा करने का उपाय कहे हैं ।

गाथा

णियमइ अणुसारेण व्यवहार णवेण समय सुद्धीए ।
कालक्खेत्तणु माणे परिक्खउ जाणिउ सुगुरु ॥ १३४ ॥

अर्थः—अपनी बुद्धि के अनुसार व्यवहार नय करि सिद्धान्त की शुद्धी करि काल क्षेत्र के अनुमान करि परीक्षा करि कैं सुगुरन को जानहु ॥ १३४ ॥

भावार्थः—रत्नत्रय का साधकपना साधू का लक्षण है, सो निश्चय दृष्टि करि अंतरंग तो दीसता नाहीं । परंतु व्यवहारनय करि सिद्धान्त में महाव्रतादि आचरण कह्या है । ता करि परखना जो इन में पाइये है, ते गुरु है । इनमें न पाइये, ते कुगुरु हैं । बहुरि ऐसे काल क्षेत्र में गुरुन का आचरण बने है, ऐसे काल क्षेत्र में न बने है, ऐसा विचार करि गुरुन के योग्य क्षेत्र काल में जहां पंच महाव्रतादि दीसे ते गुरु हैं । अर गुरुन योग्य क्षेत्र काल नाहीं, तहां तिष्ठे, अर पंच महाव्रतादि जिन में पाइये नाहीं अर आपको गुरु माने, ते कुगुरु हैं । ऐसा जानना ॥ १३४ ॥

गाथा

तहविहु णिय जडयाए कम्म गुरु त्तस्सणेव वीससिमो ।
धण्णाण कयत्थाणं सुद्ध गुरु मिलइ पुण्णेण ॥ १३५ ॥

अर्थः—ऐसें परिक्षा करे हैं, तो भी कर्म के तीव्र उदय तें अपनी अज्ञानता करि गुरुन का हम विश्वास नाहीं करे हैं, निश्चय नाहीं करे हैं, सो भाग्यवान कृतार्थ जीवनि कों पुण्य के उदय करि सुद्ध गुरु मिले हैं ।

सांचे गुरु का मिलना सहज नाहीं । जाका भला

की हीलना करे हैं, सो जिनराज के वचन में कह्या भी न माने हैं। तो कहा वंदे है पूजे हैं।

भावार्थः—कोई जीव बाह्य जिनराज को पूजा वंदना तो बहुत करे, अर ताके वचन को माने ही नाहीं तो ताकी वंदना पूजा कार्य-कारी नाहीं ॥ १३१ ॥

गाथा

लोएवि इमं सुणियं आराहिज्जंतं ण कोविज्जो।
मण्णिज्ज तस्सवयणं जइ इच्छसि इच्छियं काओ ॥१३२॥

अर्थः—लोक में भी ऐसा सुनिये है जो जाकूं आराधिये, सेइये. ताकों कोपित न कीजिये जो वांछित करने कों चाहे है। तो ताका वचन मानि।

भावार्थः—लोक में भी यहु प्रसिद्ध है जो कोई राजादिक कों सेवे अर तासें फल चाहे तो ताकी आज्ञा प्रमाण है, सो करे। अर सेवा तो करे, अर आज्ञा ताकी न माने तो फल मिले नाहीं। तैसे हीं जिनदेव को आराधे है, तो तिनकी आज्ञा प्रमाण करना। कदाच आज्ञा प्रमाण न करेगा तो आराधना का फल मोक्षमार्ग पावना दुर्लभ है ॥ १३२ ॥

गाथा

दूसम दंडे लोए दुक्ख सिठ्ठम्मि दुठ्ठ उदयम्मि।
धण्णाण जाण ण चलइ सम्मत्तं ताण पणमामि ॥१३३॥

अर्थः—दुःखी है श्रेष्ठ पुरुष जैनी लोक जामें, अर दुष्टनि का है उदय जा विषें, ऐसे पंचम काल के दंड सहित लोक विषें जिन भाग्यवाननि का सम्यक्त्व न चले है तिनकों मैं नमस्कार करूं हूं।

भावार्थः—इस निकृष्ट काल में सम्यक्त विगड़ने के कारण अनेक बन रहे है। तिनमें भी जो चलित न होय, सो धन्य है ॥१३३॥

आगें गुरुनि की परिक्षा करने का उपाय कहे है ।

गाथा

णियमइ अणुसारेण व्यवहार णयेण समय सुद्धीए ।
कालक्खेत्तणु माणे परिक्खउ जाणिउ सुगुरु ॥ १३४ ॥

अर्थः–अपनी बुद्धि के अनुसार व्यवहार नय करि सिद्धान्त की शुद्धी करि काल क्षेत्र के अनुमान करि परीक्षा करि कें सुगुरन को जानहु ॥ १३४ ॥

भावार्थः–रत्नत्रय का साधकपना साधू का लक्षण है, सो निश्चय दृष्टि करि अंतरंग तो दीसता नाहीं । परंतु व्यवहारनय करि सिद्धान्त में महाव्रतादि आचरण कह्या है । ता करि परखना जो इन में पाइये है, ते गुरु है । इनमें न पाइये, ते कुगुरु हैं । बहुरि ऐसे काल क्षेत्र में गुरुन का आचरण बने है, ऐसे काल क्षेत्र में न बने है, ऐसा विचार करि गुरुन के योग्य क्षेत्र काल में जहां पंच महाव्रतादि दीसे ते गुरु हैं । अर गुरुन योग्य क्षेत्र काल नाहीं, तहां तिष्ठे, अर पंच महाव्रतादि जिन में पाइये नाहीं अर आपको गुरु मानें, ते कुगुरु हैं । ऐसा जानना ॥ १३४ ॥

गाथा

तहविहु णिय जडयाए कम्म गुरु त्तस्सणेव वीससिमो ।
धण्णाण कयत्थाणं सुद्ध गुरु मिलइ पुण्णेण ॥ १३५ ॥

अर्थः–ऐसें परिक्षा करे हैं, तो भी कर्म के तीव्र उदय तें अपनी अज्ञानता करि गुरुन का हम विश्वास नाहीं करे हैं, निश्चय नाहीं करे हैं, सो भाग्यवान कृतार्थ जीवनि कों पुण्य के उदय करि सुद्ध गुरु मिले हैं ।

सांचे गुरु का मिलना सहज नाहीं । जाका भला

कों हीलना करे हैं, सो जिनराज के वचन में कह्या भी न माने हैं। तो कहा वंदे है पूजे हैं।

भावार्थः—कोई जीव वाह्य जिनराज की पूजा वंदना तो वहुत करे, अर ताके वचन को माने ही नाहीं तो ताकी वंदना पूजा कार्य-कारी नाहीं ॥ १३१ ॥

गाथा

लोएवि इमं सुणियं आराहिज्जंतं ण कोविज्जो।
मण्णिज्ज तस्सवयणं जइ इछसि इच्छियं काओ ॥१३२॥

अर्थः—लोक में भी ऐसा सुनिये है जो जाकूं आराधिये, सेइये. ताकों कोपित न कीजिये जो वांछित करने कों चाहे हैं। तो ताका वचन मानि।

भावार्थः—लोक में भी यहु प्रसिद्ध है जो कोई राजादिक कों सेवे अर तासें फल चाहे तो ताकी आज्ञा प्रमाण है, सो करे। अर सेवा तो करे, अर आज्ञा ताकी न माने तो फल मिले नाहीं। तैसे हीं जिनदेव को आराधे है, तो तिनकी आज्ञा प्रमाण करना। कदाच आज्ञा प्रमाण न करेगा तो आराधना का फल मोक्षमार्ग पावना दुर्लभ है ॥ १३२ ॥

गाथा

दूसम दंडे लोए, दुक्ख सिठ्टम्मि दुठ्ट उदयम्मि।
धण्णाण जाण ण चलइ सम्मत्तं ताण पणमामि ॥१३३॥

अर्थः—दुःखी है श्रेष्ठ पुरुष जैनी लोक जामें, अर दुष्टनि का है उदय जा विषें, ऐसे पंचम काल के दंड सहित लोक विषें जिन भाग्यवाननि का सम्यक्त्व न चले है तिनकों मैं नमस्कार करूं हूं।

भावार्थः—इस निकृष्ट काल में सम्यक्त विगड़ने के कारण अनेक वन रहे हैं। तिनमें भी जो चलित न होय, सो धन्य हैं ॥१३३॥

आगें गुरुनि की परिक्षा करने का उपाय कहे है ।

गाथा

णियमइ अणुसारेण व्यवहार णयेण समय सुद्धीए ।
कालक्खेत्तणु माणे परिक्खउ जाणिउ सुगुरु ॥ १३४ ॥

अर्थः–अपनी बुद्धि के अनुसार व्यवहार नय करि सिद्धान्त की शुद्धी करि काल क्षेत्र के अनुमान करि परीक्षा करि कें सुगुरुन को जानहु ॥ १३४ ॥

भावार्थः–रत्नत्रय का साधकपना साधू का लक्षण है, सो निश्चय दृष्टि करि अंतरंग तो दीसता नाहीं । परंतु व्यवहारनय करि सिद्धान्त में महाव्रतादि आचरण कह्या है । ता करि परखना जो इन में पाइये है, ते गुरु है । इनमें न पाइये, ते कुगुरु हैं । बहुरि ऐसे काल क्षेत्र में गुरुन का आचरण बने है, ऐसे काल क्षेत्र में न बने है, ऐसा विचार करि गुरुन के योग्य क्षेत्र काल में जहां पंच महाव्रतादि दीसे ते गुरु हैं । अर गुरुन योग्य क्षेत्र काल नाहीं, तहां तिष्ठे, अर पंच महाव्रतादि जिन में पाइये नाहीं अर आपको गुरु माने, ते कुगुरु हैं । ऐसा जानना ॥ १३४ ॥

गाथा

तहविहु णिय जडयाए कम्म गुरु त्तस्सणेव वीससिमो ।
धण्णाण कयत्थाणं सुद्ध गुरु मिलइ पुण्णेण ॥ १३५ ॥

अर्थः–ऐसें परिक्षा करे हैं, तो भी कर्म के तीव्र उदय तें अपनी अज्ञानता करि गुरुन का हम विश्वास नाहीं करे हैं, निश्चय नाहीं करे हैं, सो भाग्यवान कृतार्थ जीवनि कों पुण्य के उदय करि सुद्ध गुरु मिले हैं ।

सांचे गुरु का मिलना सहज नाहीं । जाका भला

होनहार होय ताकों गुरुन का संजोग मिलै। हम अज्ञानी भाग्यहीन तिनके गुरू का निश्चय कैसें होय। ऐसें आपकी निंदा पूर्वक गुरुन के उत्कृष्ट पने की भावना भाई है ऐसा जानना ॥ १३५ ॥

गाथा

अहयं पुणो अउत्तो, ता जइ पत्तो अह ण पत्तोय।
तह विहु सो मह सरणं संपइ जो जुग पहाण गुरु ॥१३६॥

अर्थः—बहुरि हम पुण्यहीन कों सांचे जुग प्रधान गुरू की प्राप्ति होहु वा मति होहु। तो भी हम सांचे जुग प्रधान गुरुनि के सरणे प्राप्ति होहु।

भावार्थः—आत्म निंदा करि सत्य स्वरूप गुरुणि के सरण की भावना भाई है ॥ १३६ ॥

गाथा

जिणधम्मं दुण्णेयं अय सयणाणिहिं ण जइ सम्मं।
तह विहु समयट्ठिइए ववहार णयेण णायव्वं ॥ १३७ ॥

अर्थः—बड़े ज्ञानीन करि भी जो यथार्थ जिन धर्म कष्ट करि भी जानना योग्य है। तो भी मत की स्थिरता के अर्थ व्यवहार नय करि जानना योग्य है।

भावार्थः—निश्चय करि मोह रहित आत्मा की परणति रुप जिन धर्म तो बड़े ज्ञानीन करि जानना कठिन है। ताका लाभ होना तो दुर्लभ है। तो व्यवहार धर्म अरंहतादिक के श्रद्धादि रुप सो ही जानना भला है। जातें जिनमत की थिरता बनी रहे, परंपराय सांचा धर्म भी मिल जाय। बहुरि व्यवहार धर्म भी न होय तो पाप वृत्ति होने तें निगोदादि चला जाय। तहां धर्म

को वार्ता भी दुर्लभ है। तातैं परमार्थ जानने की शक्ति न होय तो व्यवहार जानना ही भला है। ऐसा जानना ॥ १३७ ॥

गाथा

जह्मा जिणेहि भणियं, सुय ववहारं विसोहयं तस्स।
जायइ विसुद्ध बोही, जिण आणाराह गत्ताउ ॥ १३८ ॥

अर्थः—जातैं जिनराज ने कह्या जो शास्त्र का व्यवहार सो तो परमार्थ धर्म का सोधने वाला है। परमार्थ के स्वरुप कों न्यारा दिखावे है। बहुरि जिनराज की आज्ञा के आराधक पने तो निर्मल बोधि कहिये दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकता सो उपजे है। भावार्थः—व्यवहार हैं सो निश्चय का साधक है। तातैं शास्त्राभ्यास सरुप व्यवहार तैं परमार्थ रुप वीतराग धर्म की प्राप्ति होय है ऐसा जानना ॥ १३८ ॥

गाथा

जे जे दीसंति गुरु, समय परिक्खाइ तेण पुज्जंति।
पुण एणं सद्दहणं, दुप्पसहो जावजं चरणं ॥ १३९ ॥

अर्थः—जे जे लोक में गुरु दीसे हैं। गुरु कहावे हैं। ते ते शास्त्र की परिक्षा करिने पूजिये हैं। शास्त्रोक्त गुण जिनमें न दीसे, ते न पूजिये हैं। बहुरि एक श्रद्धान करना ही कठिन है। तो जावज्जीव चारित्र धारना तो कठिन ही है। तातैं चारित्र के धारी, हैं ते ही पूज्य हैं। ऐसा गाथा का भाव जानना ॥ १३९ ॥

गाथा

ता एगो जुग-पवरो, मज्झत्थ मणेहिं समय दिट्ठीए।
सम्मं परिक्खियव्वो, मुत्तूण पवाह हलबोलं ॥ १४० ॥

अर्थः—तातैं एक युग-प्रधान जो आचार्य हैं, सो मध्यस्थ मन करि पक्षपात रहित होय करि, अर शास्त्र दृष्टि करि लोक

प्रवाह् कों त्यागे कै भले प्रकार परखना योग्य है ।

भावार्थः—हमारे तो ये ही गुरु हैं । हमको गुण दोष विचारवे कहा प्रयोजन है । ऐसा पक्षपात त्याग करि शास्त्र में जैसे गुरुन गुण दोष कहे हैं, तैसे विचार करि । बहुरि- लोक मूढता त्या करि गुरू मानना योग्य है ॥ १४० ॥

गाथा

संपइ दूसम सयये णामायरिएहिं जाणिय जण मोहा ।
सुद्ध धम्माउणिउणा चलंहि वहुजण पवाहाउ ॥१४१॥

अर्थः—अवार इस दुःखमा काल विषै नामाचार्य कहिए आचार्य के गुण तो जिन में नाहीं । अर आचार्य कहावे हैं । तिन करि उपजाया जो लोक में गहल भाव, तातैं निपुण पुरुष भी सुद्ध धर्म ते चले हैं, और तो चले ही चले । कैसा है गहल भाव ? बहुत जनन के प्रवाह् रुप है । अनेक ज्ञानी जीव तैसे ही माने हैं।

भावार्थः—कुगुरु के निमित्त तैं बुद्धिवान को भी बुद्धि चल जाय है । तिनका निमित्त मिलावना योग्य नाहीं ॥ १४१ ॥

गाथा

जाणिज्ज मिछदिट्ठी जे पडणा लंबणाइं णिण्हंति ।
ते पुण सम्मादिट्ठी तेसिं मणो चडन पयडीए ॥ १४२ ॥

अर्थः—जे जीव पतना लंबन कहिए नीचा पड़ने रुप आलंबन कों गहे है । ते जीव मिथ्यादृष्टी हैं, ऐसा तू जान । बहुरि सम्यग्दृष्टि जिनका मन ऊपर चढने रुप सीढ़ी विषै हैं ।

जे जीव अणुव्रतादि महाव्रतादि रुप ऊपरली दसा कों त्यागि, नीचली दसा जिनकों रुचे हैं, ते मिथ्यादृष्टि हैं । बहुरि सम्यक्तादि ऊपर ऊपर धर्म धारने का जिनका भाव हैं, ते सम्यग्दृष्टि है ऐसा जानना ॥ १४२ ॥

गाथा

सव्वंपि जए सुलहं सुपण्ण रयणाइ वत्थु वित्थारं।
णिच्चं चिअ मेलावं सुमग्ग णिरयाण अइ दुलहं ॥१४३॥

अर्थः–जगत विषैं सुवर्ण रत्न आदि वस्तूनि का विस्तार सर्व ही सुलभ है। बहुरि जे सुमार्ग में रत हैं, जिन मार्ग में यथार्थ प्रवर्ते है तिनका मिलाप निश्चय करि नित्य ही दुर्लभ है ॥ १४३ ॥

गाथा

अहिमाण विसोप समत्थं यं, च थुव्वंति देव गुरुणोय।
तेहिं पि जइ माणो हा हा तं पुव्व दुच्चरियं ॥ १४४ ॥

अर्थः–अभिमान विष के उपसमावने के अर्थ अर्हंत देव या निर्ग्रंथ गुरुन का स्तवन करिये हैं, गुण गाइये हैं। बहुरि तिन करि भी जो मान पोषणा सो हाय हाय यह पूर्व पाप का उदय हैं।

भावार्थः–अरहंतादिक वीतराग है। तिनके सेवनादिक तैं मानादि कषायनि की हीनता होय है। बहुरि जे अरहंतादिक ही तें उल्टा मानादिक पोषैं, जो हम बड़े भक्त है, बड़े ज्ञानी हैं, हमारा बड़ा चैत्यालय है, तिनका अभाग्य है ॥ १४४ ॥

गाथा

जो जिण आयरणाए लोउण मिलेइ तस्स आयारे।
हा हा मूढ़ करिंतो अप्पं कह भणसि जिणवयणं ॥१४५॥

अर्थः–जो जीव जिनराज के आचरण विषैं वर्तै है ताके आचार विषै लोक न मिलै है। सो हाय हाय मूढ़ जीव लोकाचार करते संते आपको जैनी कैसे कहैं हैं।

भावार्थः—जैनिन की अलौकिक रीति होय है सोई दिखाइये है। जैनी वीतराग देव माने है। लोक रागी द्वेषी माने हैं। जैनी निर्ग्रन्थ गुरु माने। लोक संग्रय परिग्रही गुरु माने। जैनी हिंसा रहित धर्म माने लोक अज्ञानी हिंसामई धर्म माने हैं। इत्यादि और भी लोक तें उलटी रीति जैनोन की है। तहां लौकीक की ज्यों कुदेवादिक के पूजनादिक की प्रवृत्ति करें, सो जैनी काहे का ऐसा तात्पर्य जानना ॥ १४५ ॥

गाथा

जं चिय लोउ मण्णइ तं चिय मग्गंति सयल लोयावि।
जं मण्णइ जिणणाहो तं चिय मण्णंति किवि विरला ॥१४६॥

अर्थः—जाहि निश्चय करि अज्ञानी लोक माने ताकों तो सर्व लोक माने ही। परंतु जाहि जिनराज माने हैं। ताहि कोई विरले जीव माने है।

भावार्थः—अज्ञानी कों धन धान्यादि उत्कृष्ट भासे है। सो तो सर्व मोही जीवनि कों स्वयमेव उत्कृष्ट भासे ही है। परंतु वीतराग भाव कों हित मानने वाले थोड़े हैं। जातें जिनके निकट-संसार होय मोह मंद होय, तिन ही कों वीतरागता रुचे है ॥ १४६ ॥

गाथा

माहम्मि आउ अहिउ, बंधु सुप्पाइ सु जाण अणुराउ।
तेसि णट्ठ सम्मत्तं विण्णेयं समय णीईए ॥ १४७ ॥

अर्थः—जिनके साधर्मी तें तो अहित होय, अर बंधु पुत्रादिकनि में अनुराग है। तिनके सिद्धान्त के न्याय करि प्रगट पने सम्यक्त्व न जानना ॥ १४७ ॥

भावार्थः-सम्यक्त के अंग तो वात्सल्यादि भाव हैं, सो जाके मार्गमी से प्रीति नाहीं, ताके सम्यक्त नाहीं। पुत्रादिक से प्रीति तो मोह के उदय तें सबहीन के होय है। तामें किछु सार नाहीं। ऐसा जानना ॥ १४७ ॥

गाथा

जय जाणसि जिणणाहो लोयायारस्य परकएतउ।
ता तं तं मण्णंतो कह मण्णसि लोय आयारं ॥ १४८ ॥

जो तू लोकाचार तें पहिभूत जिनराज को जाने है, तो ता जिनराज कों मानता लोकाचार कों कैसे माने है।

भावार्थः-जिनमत तो अलौकिक है। ताहि जिनराज कों मानतो संता लोकाचार कों कैसे माने है। तो मिथ्यादृष्टीन की रीति मत माने ऐसा जानना ॥ १४८ ॥

गाथा

जे मण्णेवि जिणिंदं पुणोवि पणमंति इयर देवाणं।
मिच्छत्त सण्णिवाइय पत्याणं ताण को विज्जो ॥१४९॥

अर्थः-जे जीव जिनराज कों मानि करि भी फेर और ब्रह्मा विष्णु, महेश, भैरव, क्षेत्रपाल देवी इत्यादि देवनि कों नमस्कार करे हैं। तिन मिथ्यात्व सन्निपात करि ग्रस्त जीवनि का कौन वैद्य है।

भावार्थः-अन्य जीव तो मिथ्यादृष्टि है ही। मिथ्यात्व का नाश का उपाय जिनमत है। बहुरि जिनमत पाय करि भी जिनका मिथ्यात्व भाव न जाय तो फेर ताका उपाय और नाहीं ॥१४९॥

गाथा

एगो सुगुरु एगोवि सावगो चेइयाइ विविहाणि।
तत्य यज जिणदव्वं परप्परं ते ण विच्चंति ॥ १५० ॥

गाथा

ते ण गुरुणो सद्दा ण पउ होइ ते हि जिणणाहो।
मूढाणं मोहठिई सोणं जइ समय णिउणेहि ॥ १५१ ॥

अर्थः—सुगुरु जे निर्ग्रंथ गुरु ते सर्व एक हैं। अर श्रावक भी एक हैं। अर नाना प्रकार चैत्य कहिये जिनबिंब, ते एक हैं तहां जे जिन द्रव्य जो चैत्यालय का द्रव्य परस्पर खरचे हैं। ते गुरु हैं नाहीं, अर श्रावक भी नाहीं। अर तिन करि जिनराज पूजा नाहीं। तिन मूढ़ जीवनि की मिथ्या परणीत शास्त्र ज्ञानीनि करि जानिए हैं।

भावार्थः—केई जीव चैत्यालयादिक में भेद माने हैं। जो ये चैत्यालयादिक हमारे हैं। ये पर के हैं। ऐसा मानि परस्पर भक्ति न करे हैं। धन न खरचे हैं। ते मिथ्यादृष्टी हैं। जातें जिनमत की यहु रीति नाहीं ॥ १५१

गाथा

सो ण गुरु जुगपवरो, जस्सयवयण मिवट्टए भेउ।
चिय भयण सट्टगाण, साहारण दव्व माईणं ॥ १५२ ॥

अर्थः—जाके वचन में जिन मंदिर अर श्रावक अर पंचायती द्रव्य इत्यादिकनि में भेद वर्ते हैं सो जुग प्रधान गुरु नाहीं।

भावार्थः—केई चैत्यवासी श्वेतांबर रक्तांबर आदि हैं ते कहे हैं, जो यह हमारा मंदिर है, ये हमारे श्रावक हैं। यहु हमारा द्रव्य है। ये चैत्यालयादि हमारे नाहीं। ऐसे माने हैं, ते गुरु नाहीं।

गुरु तो बाह्याभ्यंतर परिग्रह रहित वीतराग है। ते ही है। ऐसा तात्पर्य जानना ॥ १५२ ॥

गाथा

संपइ पहुवय णेणवि जाव ण उल्लसइ विहि विवेयत्तं।
ता निवड़ मोह मिच्छत्त रांठिया दुट्ठ माहप्पं ॥१५३ ॥

अर्थः—अबार जिनराज के वचन करि भी हिताहित का विवेक पना जब ताईं हुलसायमान न होय तहां ताईं गाढी जो मोह मिथ्यात्व रुप गाढता का खोटा महात्म्य है।

भावार्थः—जिन वचन पाय करि भी जो हिताहित का ज्ञान ना भया तो जानना याके तीव्र मिथ्यात्व का उदय है ॥ १५३ ॥

गाथा

बंधण मरण भयाइं दुहाइं तिक्खाइ णेय दुक्खई।
दुरकाण इह णिहाणं पहुवय णासायणा करणं ॥ १५४ ॥

अर्थः—इस लोक में बंधन अर मरण के भय हैं, अर तीव्र दुःख हैं, ते दुःख नाहीं दुःखनि का निधान तो जिनराज के वचन की विराधना करणा है।

भावार्थः—बंधनादिक तो वर्तमान ही में दुःखदाई है। अर जिन-वचन को विराधन अनंत भव में दुःखदाई हैं। तातें जिन आज्ञा भंग करना महा दुःखदाई जानना ॥ १५४ ॥

गाथा

पहुवयण विहि रहस्सं णाउणवि जाव ण दीसए दृप्पा।
ता कह सुसावमत्तं जं चिण्णं धीर पुरुसेहिं ॥ १५५ ॥

अर्थः—जिन वचन के विधान का रहस्य जानि करि भी यावत्

आत्मा न देखिये हैं. तहां ताई श्रावक पना कैसे होय । कैसा है श्रावक पना जो धीर पुरुषनि करि आचरया हैं ।

भावार्थः-प्रथम जिनवाणी के अनुसार आत्म ज्ञानी होय । पीछैं श्रावक के या मुनि के व्रत धारें, यह रीति है । तातें आत्म ज्ञानी नाहीं, तिनके सांचा श्रावक पना भी नाहीं । ऐसा जानना ॥१५५॥

गाथा

जइ विहु उत्तम सावय पयडीए चडण करण असमत्यो
तहपि पहुवयण करणे मणोरहो मज्झ हिययम्मि ॥१५६॥

अर्थः-यद्यपि मैं उत्तम श्रावक की पैंड़ी पै चढने को असमर्थ हों, तथापि जिनवचन करणें में मेरे हृदय विषें मनोरथ वर्ते है ।

भावार्थः-शक्ति के हीन पने तें उत्कृष्ट व्रत नाहीं धार सकूं हूं, तो भी मेरे जिन आज्ञा प्रमाण धर्म धारने की लालसा है । ऐसें ग्रन्थकार ने भावना भाई है ॥ १५६ ॥

गाथा

ता पहु पणमिय चरणे इक्कं ययेमि परम भावेण ।
तुह वयण रयण गहणे अइ लोहो हुज्ज मुज्झ सया ॥१५७॥

अर्थः-तातें हे प्रभू तुम्हारे चरणनि कों नमस्कार करि कैं परम भाव करि एक प्रार्थना करूं हूं । जो तेरे वचन रुप रत्ननि के ग्रहण विषें मेरे सदा अति लोभ होऊ । ऐसें ग्रन्थकार ने इष्ट प्रार्थना करि है ॥ १५७ ॥

गाथा

इह मिच्छवास णिक्किट्ठं भाव उगलिय गुरु विवेयाणं ।
अह्माण कह सुहाइ संभावि ज्जंति सुविणेवि ॥ १५८ ॥

अर्थः-इस पंचमकाल विर्षे मिथ्यात्व का ठिकाना जो निकृष्ट भाव तातें नष्ट भया है महा विवेक जिनका । अथवा गुरुन का विवेक जिनकें, ऐसे जे हम तिनके स्वप्न विषें भी सुख कैसें संभावना करिये हैं ।

भावार्थः-सुख का मूल विवेक है । सो विवेक थी गुरुन के प्रसाद तें होय है । अर इस काल में श्री गुरुन का निमित्त मिलना ही कठिन तो सुख कैसें होय ॥ १५८ ॥

गाथा

जं जीविय मित्तंविहु धरेमि णामंपि सावयाणं च ।
तंपि पहु महा चुज्जं इह विसमे दूसमे काले ॥ १५९ ॥

अर्थः-इस विषम पंचम काल विषें जो मैं जीवित मात्र धरु हूं । अर श्रावकनि का नाम मात्र धरु हूं । सो भी हे प्रभू महा आश्चर्य है ।

भावार्थः-इस काल में मिथ्यात्व की प्रवृत्ति घनी है । तातें हम जीवे है, अर श्रावक कहावे हैं । सो भी आश्चर्य है । ऐसें श्रावक पने की इस काल में दुर्लभता दिखाई है ॥ १५९ ॥

गाथा

परिभाविऊण एवं तह सुगुरु करिज्य अह्म समित्तं ।
पहु सामग्गि सुजोगे जह सुलहं होइ सम्मत्तं ॥ १६० ॥

अर्थः-ऐसें विचारिके हे सुगुरू ! हे प्रभो ! हमारा स्वामी पना तैसे करहु । जैसें सामग्री का सुयोग होत संते सम्यक्त सुलभ होय अथवा "जह सहलं होइ मणुयत्त" ऐसा भी पाठ है । ताका यहु अर्थ है । जो मनुष्य पना सफल होय तैसे करउ ॥ १६० ॥

आत्मा न देखिये हैं. तहां ताईं श्रावक पना कैसे होय। कैसा है श्रावक पना जो धीर पुरुषनि करि आचरया हैं।

भावार्थः—प्रथम जिनवाणी के अनुसार आत्म ज्ञानी होय। पीछें श्रावक के वा मुनि के व्रत धारें, यहु रीति है। तातें आत्म ज्ञानी नाहीं, तिनके सांचा श्रावक पना भी नाहीं। ऐसा जानना ॥१५५॥

गाथा

जइ विहु उत्तम सावय पयडीए चडण करण असमत्थो।
तहपि पहुवयण करणे मणोरहो मज्झ हिययम्मि ॥१५६॥

अर्थः—यद्यपि मैं उत्तम श्रावक की पैड़ी पै चढने को असमर्थ हों, तथापि जिनवचन करणें में मेरे हृदय विषें मनोरथ वर्तें है।

भावार्थः—शक्ति के हीन पने तें उत्कृष्ट व्रत नाहीं धार सकू हूं, तो भी मेरे जिन आज्ञा प्रमाण धर्म धारने को लालसा है। ऐसें ग्रन्थकार ने भावना भाई है ॥ १५६ ॥

गाथा

ता पहु पणमिय चरणे इक्कं ययेमि परम भावेण।
तुह वयण रयण गहणे अइ लोहो हुज्ज मुज्झ सया ॥१५७॥

अर्थः—तातें हे प्रभु तुम्हारे चरणनि कौं नमस्कार करि कै परम भाव करि एक प्रार्थना करूं हूं। जो तेरे वचन रूप रत्ननि के ग्रहण विषें मेरे सदा अति लोभ होऊ। ऐसें ग्रन्थकार ने इष्ट प्रार्थना करि है ॥ १५७ ॥

गाथा

इह मिच्छवास निकिट्ठं भाव उगलिय गुरु विवेयाणं।
सन्नाण कह सुहाइ संभावि ज्जंति सुविणेवि ॥ १५८ ॥

अर्थः-इस पंचमकाल विषें मिथ्यात्व का ठिकाना जो निकृष्ट भाव तातें नष्ट भया है महा विवेक जिनका। अथवा गुरन का विवेक जिनकें, ऐसे जे हम तिनके स्वप्न विषें भी सुख कैसें संभावना करिये हैं।

भावार्थः-सुख का मूल विवेक है। सो विवेक श्री गुरन के प्रसाद तें होय है। अर इस काल में श्री गुरन का निमित्त मिलना ही कठिन तो सुख कैसें होय ॥ १५८ ॥

गाथा

जं जीविय मित्तंविहु धरेमि णामंपि सावयाणं च।
तंपि पहु महा चुज्जं इह विसमे दूसमे काले ॥ १५९ ॥

अर्थः-इस विषम पंचम काल विषें जो मैं जीवित मात्र धरु हूं। अर श्रावकनि का नाम मात्र धरु हूं। सो भी है प्रभू महा आश्चर्य है।

भावार्थः-इस काल में मिथ्यात्व की प्रवृत्ति घनी है। तातें हम जीवे है, अर श्रावक कहावे हैं। सो भी आश्चर्य है। ऐसें श्रावक पने की इस काल में दुर्लभता दिखाई है ॥ १५९ ॥

गाथा

परिभाविऊण एवं तह सुगुरु करिज्ज अह्म समित्तं।
पहु सामग्गि सुजोगे जह सुलहं होइ सम्मत्तं ॥ १६० ॥

अर्थः-ऐसें विचारिके हे सुगुरू ! हे प्रभो ! हमारा स्वामी पना तैसे करहु। जैसें सामग्री का सुयोग होत [illegible] सुलभ होय अथवा "जह सहलं होइ मणुयत्तं" [illegible] ताका यहु अर्थ है। जो मनुष्य पना सफल [illegible] १६० ॥

गाथा

एवं भंडारिय णेमिचन्द रइयावि कइ विगाहाउ
विहि मग्गरया भव्वा पठंतु जाणंतु जंतु शिवं ॥ १६१ ॥

अर्थ:—या प्रकार भंडारी "नेमिचंद" करि रचित किछु एक वे गाया हैं, तिनहि भव्य जीव हैं, ते पढहु, जानहु, कल्याण कौ प्राप्ति होउ। कैसे हैं, भव्य आचरण के मार्ग विषें रत हैं। यथार्थ आचरण में तत्पर हैं ॥ १६१ ॥

ऐसें "उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला" नाम ग्रंथ के गाथा सूत्रनि की वचनिका समाप्त भई। इस ग्रंथ की संस्कृत टीका तो थी नहीं। परंतु किछु टिप्पण था, तातें विधि मिलाय मेरी बुद्धि में प्रति-भास्या तैसा अर्थ लिख्या है। कहीं भूल अवश्य होगयी सो बुद्धियान सोध लीजो। आम्नाय विरुद्ध अर्थ तो मैंने लिख्या नाहीं। परंतु गाथा के कर्त्ता का अभिप्राय और भी होय तो समझ लीजो।

सवैया ३१

रागादिक दोष जामें, पाइये कुदेव सोय।
ताकों त्यागि वीतराग देव उर ल्याइये ॥
वस्त्रादिक ग्रंथ धारक, गुरु विचार तिन्हें।
गुरु निग्रर्थ कों यथार्थ रूप ध्याइये ॥
हिंसामय कर्म सों कुकर्म जानि दूर त्यागो।
दयामय धर्म ताहि निशदिन भाइये ॥
सम्यक् दरस मूल कारण सरस ये ही।
इनकें विचार में न कहुं अलसाइये ॥

छप्पय

मंगल श्री अरहंत संत जिन चिंतित दायक ।
मंगल सिद्ध समूह सकल ज्ञेयाकृति ज्ञायक ।।
मंगल सूरि महंत भूरि गुणवंत विमल मति ।
उपाध्याय सिद्धान्त पाठ कारक प्रवीण अति ।।
निज सिद्ध रूप साधन करत, साधु परंम मंगल करण ।
मन वचन काय लय लायनित "भागचंद" वंदत चरण ।।

छप्पय

गोपाचल के निकट, सिंधिया नृपति कटक वर ।
जैनी जन बहु वसह जहां जिन भक्ति भाव भर ।।
तिन मह तेरहपथं, गोष्ट राजत विशिष्ट अति ।
पार्श्वनाथ जिन धाम, रच्यो जिन सुभ उतंग अति ।।
तहं देश वचनिका रुप यह, "भागचंद" रचना करिय ।
जयवंत होउ सतसंग नित, जाप्रशाद बुधि विस्तरिय ।।

दोहा

संवत्सर गुन ईससे, द्वादश ऊपर धार । ७८९२
दोज कृष्ण आषाढ़ की, पूर्ण वचनिका सार ।।

ऐसें "उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला" की वचनिका समाप्तं संपूर्ण ।

संवत् १९१४ का विरषे मास मिति चैत सुदी ९ दीतवारे लिखी नो लाई का तेरहपथं आम्नाय का मंदिर सुद्ध सहेली वाचनार्थं ।

समाप्त

गाथा

एवं भंडारिय णेमिचन्द रइयावि कइ विगाहाउ।
विहि मग्गरया भव्वा पठंतु जाणंतु जंतु शिवं ॥ १६१ ॥

अर्थ:—या प्रकार भंडारी "नेमिचंद" करि रचित किछु एक ये गाथा हैं, तिनहि भव्य जीव है, ते पढहु, जानहु, कल्याण कों प्राप्ति होउ। कैसे हैं, भव्य आचरण के मार्ग विषें रत हैं। यथार्थ आचरण में तत्पर हैं ॥ १६१ ॥

ऐसें "उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला" नाम ग्रंथ के गाथा सूत्रनि की वचनिका समाप्त भई। इस ग्रंथ की संस्कृत टीका तो थी नहीं। परंतु किछु टिप्पण था, तातें विधि मिलाय मेरी बुद्धि में प्रति-भास्या तैसा अर्थ लिख्या है। कहीं मूल अक्षर होगयी सो बुद्धिवान सोध लीजो। आम्नाय विरुद्ध अर्थ तो मैंने लिख्या नाहीं। परंतु गाथा के कर्त्ता का अभिप्राय और भी होय तो समझ लीजो।

सवैया ३१

रागादिक दोष जामें, पाइये कुदेव सोय।
ताकों त्यागि वीतराग देव उर ल्याइये ॥
वस्त्रादिक ग्रंथ धारक, गुरु विचार तिन्हें।
गुरु निग्रंथ कों यथार्थ रूप ध्याइये ॥
हिंसामय कर्म सों कुकर्म जानि दूर त्यागो।
दयामय धर्म ताहि निशदिन भाइये ॥
सम्यक् दरस मूल कारण सरस ये ही।
इनके विचार में न कहूँ अलसाइये ॥

छप्पय

मंगल श्री अरहंत संत जिन चिंतित दायक।
मंगल सिद्ध समूह सकल ज्ञेयाकृति ज्ञायक।।
मंगल सूरि महंत भूरि गुणवंत विमल मति।
उपाध्याय सिद्धान्त पाठ कारक प्रवीण अति।।
निज सिद्ध रूप साधन करत, साधु परम मंगल करण।
मन वचन काय लय लायनित "भागचंद" बंदत चरण।।

छप्पय

गोपाचल के निकट, सिंधिया नृपति कटक वर।
जैनी जन बहु वसह जहां जिन भक्ति भाव भर।।
तिन मह तेरहपंथ, गोष्ट राजत विशिष्ट अति।
पार्श्वनाथ जिन धाम, रच्यो जिन सुभ उतंग अति।।
तहं देश वचनिका रुप यह, "भागचंद" रचना करिय।
जयवंत होउ सतसंग नित, जाप्रशाद बुधि विस्तरिय।।

दोहा

संवत्सर गुन ईससे, द्वादश ऊपर धार। १८१२
दोज कृष्ण आषाढ़ की, पूर्ण वचनिका सार।।

ऐसें "उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला" की वचनिका समाप्तं संपूर्ण।

संवत् १९१४ का विरषे मास मिति चैत सुदी ९ दीतवारे लिखी नो लाई का तेरहपथं आम्नाय का मंदिर सुद्ध सहेली वाचनार्थ।

समाप्त

गाथा

एवं भंडारिय णेमिचन्द रइयावि कइ विगाहाउ।
विहि मगरया भव्वा पठंतु जाणंतु जंतु शिवं ॥ १६१॥

अर्थः—या प्रकार भंडारी "नेमिचंद" करि रचित किछु एक ये गाथा हैं, तिनहि भव्य जीव है, ते पढहु, जानहु, कल्याण कों प्रप्ति होउ। कैसे हैं, भव्य आचरण के मार्ग विषें रत हैं। यथार्थ आचरण में तत्पर हैं ॥ १६१ ॥

ऐसें "उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला" नाम ग्रंथ के गाथा सूत्रनि की वचनिका समाप्त भई। इस ग्रंथ की संस्कृत टीका तो थी नहीं। परंतु किछु टिप्पण था, तातें विधि मिलाय मेरी बुद्धि में प्रति-भास्या तैसा अर्थ लिख्या है। कहीं मूल अवश्य होगयो सो बुद्धिवान सोध लीजो। आम्नाय विरुद्ध अर्थ तो मैंने लिख्या नाहीं। परंतु गाथा के कर्त्ता का अभिप्राय और भी होय तो समझ लीजो।

सवैया ३१

रागादिक दोष जामें, पाइये कुदेव सोय।
ताकों त्यागि वीतराग देव उर ल्याइये ॥
वस्त्रादिक ग्रंथ धारक, गुरु विचार तिन्हें।
गुरु निग्रर्थ कों यथार्थ रूप ध्याइये ॥
हिंसामय कर्म सों कुकर्म जानि दूर त्यागी।
दयामय धर्म ताहि निशदिन भाइये ॥
सम्यक् दरस मूल कारण सरस ये ही।
इनकें विचार में न कहुं अलसाइये ॥

छप्पय

मंगल श्री अरहंत संत जिन चिंतित दायक।
मंगल सिद्ध समूह सकल ज्ञेयाकृति ज्ञायक॥
मंगल सूरि महंत भूरि गुणवंत विमल मति।
उपाध्याय सिद्धान्त पाठ कारक प्रवीण अति॥
निज सिद्ध रूप साधन करत, साधु परम मंगल करण।
मन वचन काय लय लायनित "भागचंद" वंदत चरण॥

छप्पय

गोपाचल के निकट, सिंधिया नृपति कटक वर।
जैनी जन बहु वसहु जहां जिन भक्ति भाव भर॥
तिन मह तेरहपुर्थ, गोष्ट राजत विशिष्ट अति।
पार्श्वनाथ जिन धाम, रच्यो जिन सुभ उतंग अति॥
तहं देश वचनिका रूप यह, "भागचंद" रचना करिय।
जयवंत होउ सत्संग नित, जांप्रशाद बुधि विस्तरिय॥

दोहा

संवत्सर गुन ईससे, द्वादश ऊपर धार। १९१२
दोज कृष्ण आषाढ़ की, पूर्ण वचनिका सार॥

ऐसें "उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला" की वचनिका समाप्तं संपूर्ण।

संवत् १९१४ का विरषे मास मिति चैत सुदी ९ दीतवारे लिखी नो लाई का तेरहपथं आम्नाय का मंदिर सुद्ध सहेली वाचनार्थं।

समाप्त

गाथा

एवं भंडारिय णेमिचन्द रइयावि कइ विगाहाउ।
विहि मग्गरया भव्वा पठंतु जाणंतु जंतु शिवं ॥ १६१ ॥

अर्थः—या प्रकार भंडारी "नेमिचंद" करि रचित किछु एक वे गाथा हैं, तिनहि भव्य जीव है, ते पढहु, जानहु, कल्याण कों प्राप्ति होउ। कैसे हैं, भव्य आचरण के मार्ग विषें रत हैं। यथार्थ आचरण में तत्पर हैं ॥ १६१ ॥

ऐसें "उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला" नाम ग्रंथ के गाथा सूत्रनि की वचनिका समाप्त भई। इस ग्रंथ की संस्कृत टीका तो थी नहीं। परंतु किछु टिप्पण था, तातें विधि मिलाय मेरी बुद्धि में प्रति-भास्या तैसा अर्थ लिख्या है। कहीं मूल अवश्य होगयी सो बुद्धिवान सोध लीजो। आम्नाय विरुद्ध अर्थ तो लिख्या नाहीं। परंतु गाथा के कर्त्ता का अभिप्राय और भी हो तो समझ लीजो।

सवैया ३१

रागादिक दोष जामें, पाइये कुदेव सोय।
ताकों त्यागि वीतराग देव उर ल्याइये ॥
वस्त्रादिक ग्रंथ धारक, गुरु विचार तिन्हें।
गुरु निग्रंथ कों यथार्थ रूप ध्याइये ॥
हिंसामय कर्म सों कुकर्म जानि दूर त्यागो।
दयामय धर्म ताहि निशदिन भाइये ॥
सम्यक् दरस मूल कारण सरस ये ही।
इनकें विचार में न कहुं अलसाइये ॥

छप्पय

मंगल श्री अरहंत संत जिन चिंतित दायक।
मंगल सिद्ध समूह सकल ज्ञेयाकृति ज्ञायक॥
मंगल सूरि महंत भूरि गुणवंत विमल मति।
उपाध्याय सिद्धान्त पाठ कारक प्रवीण अति॥
निज सिद्ध रूप साधन करत, साधु परम मंगल करण।
मन वचन काय लय लायनित "भागचंद" वंदत चरण॥

छप्पय

गोपाचल के निकट, सिंधिया नृपति कटक वर।
जैनी जन बहु वसह जहां जिन भक्ति भाव भर॥
तिन मह तेरहपंथ, गोष्ट राजत विशिष्ट अति।
पार्श्वनाथ जिन धाम, रच्यो जिन शुभ उतंग अति॥
तहं देश वचनिका रूप यह, "भागचंद" रचना करिय।
जयवंत होउ सत्संग नित, जाप्रसाद बुधि विस्तरिय॥

दोहा

संवत्सर गुन ईससे, द्वादश ऊपर धार। १०९२
दोज कृष्ण आषाढ़ की, पूर्ण वचनिका सार॥

ऐसें "उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला" की वचनिका समाप्तं संपूर्ण।

संवत् १९१४ का विरषे मास मिति चैत सुदी ९ वीतवारे लिखी मो लाई का तेरहपंथ आम्नाय का मंदिर गुद्ध सहेली वाचनार्थी।

भजन (१)

परणति सब जीवन की तीन भांति वरणी ।
एक पुण्य एक पाप एक राग हरणी ॥१॥
तामें शुभ अशुभ बन्ध, दोय करे कर्म बन्ध ।
वीतराग परणति, भव समुद्र तरणी ॥२॥
जावत ही शुद्धोपयोग, पावत नहीं मनोयोग ।
तावत ही करण जोग, कहो पुण्य करणी ॥३॥
त्याग अशुभ क्रिया कलाप, मत को कदाच पाप ।
शुभ मेंन मगन होय, शुद्धता बिसरनी ॥४॥
ऊंच ऊंच दशाधारी, चित्त प्रमाद को बिसारी ।
ऊंचली दशा तें मति गिरो अधो घरनी ॥५॥
"भागचन्द" या प्रकार, जीव लहे सुख अपार ।
याके निराधार स्याद् वाद, को उचरनी ॥६॥

भजन (२)

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥ टेक ॥
फल चाखन की बार भरे दृग, मर हैं मूरख रोय ॥१॥
किंचित विषयन के सुख कारण, दुर्लभ देह न खोय ॥२॥
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा, इस निंदड़ी न सोय ॥३॥
इस बिरियां में धर्म कल्पतरु सींचत स्याने लोय ॥४॥
तू विष बोवन लागत तोसम और अभागा कोय ॥५॥
जे जग में दुःख दायक बेरस, इस ही के फल सोय ॥६॥
यो मन "भूदर" जानि के भाई, फिर क्यों मोंदू होय ॥७॥
अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥

जिनवाणी स्तुति

जिनवाणी हमारी हीरां जड़ी ॥

जिनवाणी हमारी मोत्या जड़ी ॥ टेक ॥

श्री जी रा मुख से खिरी जिनवाणी ।

प्रभुजी रा मुख से खिरी जिनवाणी ।

गौतम झेली मनमानी, भला गौतम झेली मनमानी ॥१॥
पुण्य उदय उत्तम कुल पायो,

धर्मन जान्यो एक घड़ी, भला धर्मन जान्यो एक घड़ी ॥२॥
जो न सुनेगा जिनवाणी हमारी,

विपत्ति आवे उसही घड़ीजी भला विपत्ति आवे उसही घड़ी ॥३॥

जो जो सुनेगा जिनवाणी हमारी, मोक्ष मिलेगा उसी घड़ी ।
जी भला मोक्ष मिलेगा उसही घड़ी ॥४॥

ऊबा श्रावक अरज करत है, ठाड़ा श्रावक अरज करत है ।
काटो हमारी कर्म लड़ी जी भला काटो हमारी कर्म लड़ी ॥५॥

जिनवाणी हमारी हीरां जड़ी ॥

भजन (१)

परणति सब जीवन की तीन भांति वरणी ।
एक पुण्य एक पाप एक राग हरणी ॥१॥
तामें शुभ अशुभ बन्ध, दोय करे कर्म बन्ध ।
वीतराग परणति, भव समुद्र तरणी ॥२॥
जावत ही शुद्धोपयोग, पावत नहीं मनोयोग ।
तावत ही करण जोग, कही पुण्य करणी ॥३॥
त्याग अशुभ क्रिया कलाप, मत को कदाच पाप ।
शुभ में मगन होय, शुद्धता बिसरनी ॥४॥
ऊंच ऊंच दशाधारी, चित्त प्रमाद को बिसारी ।
ऊंचली दशा तें मति गिरो अधो धरनी ॥५॥
"भागचन्द" या प्रकार, जीव लहे सुख अपार ।
याके निराधार स्याद् वाद, की उचरनी ॥६॥

भजन (२)

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥ टेक ॥
फल चाखन को बार भरे दृग, मर हैं मूरख रोय ॥१॥
किंचित विषयन के सुख कारण, दुर्लभ देह न खोय ॥२॥
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा, इस निदड़ी न सोय ॥३॥
इस बिरियां में धर्म कल्पतरु सींचत स्याने लोय ॥४॥
तू विष बोवन लागत तो सम और अभागा कोय ॥५॥
जे जग में दुःख दायक बेरस, इस ही के फल सोय ॥६॥
यो मन "भूधर" जानि के भाई, फिर क्यों भोंदू होय ॥७॥
अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥

जिनवाणी स्तुति

जिनवाणी हमारी हीरां जड़ी ।।

जिनवाणी हमारी मोत्या जड़ी ।। टेक ।।

श्री जी रा मुख से खिरी जिनवाणी ।

प्रभुजी रा मुख से खिरी जिनवाणी ।

गौतम झेली मनमानी, भला गौतम झेली मनमानी ।।१।।
पुण्य उदय उत्तम कुल पायो,

धर्मन जान्यो एक घड़ी, भला धर्मन जान्यो एक घड़ी ।।२।।
जो न सुनेगा जिनवाणी हमारी,

विपत्ति आवे उसही घड़ीजी भला विपत्ति आवे उसही घड़ी ।।३।।

जो जो सुनेगा जिनवाणी हमारी, मोक्ष मिलेगा उसी घड़ी ।
जी भला मोक्ष मिलेगा उसही घड़ी ।।४।।

ऊबा श्रावक अरज करत है, ठाड़ा श्रावक अरज करत है ।
काटो हमारी कर्म लड़ी जी भला काटो हमारी कर्म लड़ी ।।५।।

जिनवाणी हमारी हीरां जड़ी ।।

भजन (१)

परणति सब जीवन की तीन भांति वरणी ।
एक पुन्य एक पाप एक राग हरणी ॥१॥

तामें शुभ अशुभ बन्ध, दोय करे कर्म बन्ध ।
वीतराग परणति, भव समुद्र तरणी ॥२॥

जावत ही शुद्धोपयोग, पावत नहीं मनोयोग ।
तावत ही करण जोग, कही पुण्य करणी ॥३॥

त्याग अशुभ क्रिया कलाप, मत को कदाच पाप ।
शुभ मेंन मगन होय, शुद्धता विसरनी ॥४॥

ऊंच ऊंच दशाधारी, चित्त प्रमाद को बिसारी ।
ऊंचली दशा तें मति गिरो अधो धरनी ॥५॥

"भागचन्द" या प्रकार, जीव लहे सुख अपार ।
याके निराधार स्याद् वाद, की उचरनी ॥६॥

भजन (२)

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥ टेक ॥
फल चाखन की बार भरे दृग, मर हैं मूरख रोय ॥१॥
किंचित विषयन के सुख कारण, दुर्लभ देह न खोय ॥२॥
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा, इस निंदड़ी न सोय ॥३॥
इस विरियां में धर्म कल्पतरू सींचत स्याने लोय ॥४॥
तू विष बोयन लागत तोसम और अभागा कोय ॥५॥
जे जग में दुःख दायक बेरस, इस ही के फल सोय ॥६॥
यो मन "भूदर" जानि के भाई, फिर क्यों भोदूं होय ॥७॥
अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥

जिनवाणी स्तुति

जिनवाणी हमारी हीरां जड़ी ॥

जिनवाणी हमारी मोतया जड़ी ॥ टेक ॥

श्री जी रा मुख से खिरी जिनवाणी ।

प्रभुजी रा मुख से खिरी जिनवाणी ।

गौतम झेली मनमानी, भला गौतम झेली मनमानी ॥१॥
पुण्य उदय उत्तम कुल पायो,

धर्मन जान्यो एक घड़ी, भला धर्मन जान्यो एक घड़ी ॥२॥
जो न सुनेगा जिनवाणी हमारी,

विपत्ति आवे उसही घड़ीजी भला विपत्ति आवे उसही घड़ी ॥३॥

जो जो सुनेगा जिनवाणी हमारी, मोक्ष मिलेगा उसी घड़ी ।
जो भला मोक्ष मिलेगा उसही घड़ी ॥४॥

ऊबा श्रावक अरज करत है, ठाड़ा श्रावक अरज करत है ।
काटो हमारी कर्म लड़ी जो भला काटो हमारी कर्म लड़ी ॥५॥

जिनवाणी हमारी हीरां जड़ी ॥

भजन (१)

परणति सब जीवन की तीन भाँति वरणी ।
एक पुण्य एक पाप एक राग हरणी ॥१॥

तामें शुभ अशुभ बन्ध, दोय करे कर्म बन्ध ।
वीतराग परणति, भव समुद्र तरणी ॥२॥

जावत ही शुद्धोपयोग, पावत नहीं मनोयोग ।
तावत ही करण जोग, कही पुण्य करणी ॥३॥

त्याग अशुभ क्रिया कलाप, मत को कदाच पाप ।
शुभ मेंन मगन होय, शुद्धता विसरनी ॥४॥

ऊंच ऊंच दशाधारी, चित्त प्रमाद को विसारो ।
ऊंचली दशा तें मति गिरो अधो धरनी ॥५॥

"भागचन्द" या प्रकार, जीव लहे सुख अपार ।
याके निराधार स्याद् वाद, की उचरनी ॥६॥

भजन (२)

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥ टेक ॥
फल चाखन की बार भरे दृग, मर हैं मूरख रोय ॥१
किंचित विषयन के सुख कारण, दुर्लभ देह न खोय ॥२
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा, इस निंदड़ी न सोय ॥३
इस विरियां में धर्म कल्पतरू सींचत स्याने लोय ॥
तू विष बोवन लागत तोसम और अभागा कोय ॥
जे जग में दुःख दायक बेरस, इस ही के फल सोय ।
यो मन "भूदर" जानि के भाई, फिर क्यों भोंदू होय ।
अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥

जिनवाणी स्तुति

जिनवाणी हमारी हीरां जड़ी ।।

जिनवाणी हमारी मोत्या जड़ी ।। टेक ।।

थ्री जी रा मुख से खिरी जिनवाणी ।

प्रभुजी रा मुख से खिरी जिनवाणी ।

गौतम झेली मनमानी, भला गौतम झेली मनमानी ।।१।।
पुण्य उदय उत्तम कुल पायो,

धर्मन जाण्यो एक घड़ो, भला धर्मन जाण्यो एक घड़ी ।।२।।
जो न सुनेगा जिनवाणी हमारी,

विपत्ति आवे उसही घड़ीजी भला विपत्ति आवे उसही घड़ी ।।३।।

जो जो सुनेगा जिनवाणी हमारी, मोक्ष मिलेगा उसी घड़ी ।
जो भला मोक्ष मिलेगा उसही घड़ी ।।४।।

ऊभा श्रावक अरज करत है, ठाड़ा श्रावक अरज करत है ।
काटो हमारी कर्म लड़ी जी भला काटो हमारी कर्म लड़ी ।।५।।

जिनवाणी हमारी हीरां जड़ी ।।

भजन (१)

परणति सब जीवन की तीन भांति वरणी ।
एक पुण्य एक पाप एक राग हरणी ॥१॥
तामें शुभ अशुभ बन्ध, दोय करे कर्म बन्ध ।
वीतराग परणति, भव समुद्र तरणी ॥२॥
जावत ही शुद्धोपयोग, पावत नहीं मनोयोग ।
तावत ही करण जोग, कही पुण्य करणी ॥३॥
त्याग अशुभ क्रिया कलाप, मत को कदाच पाप ।
शुभ में न मगन होय, शुद्धता विसरनी ॥४॥
ऊंच ऊंच दशाधारी, चित्त प्रमाद को विसारी ।
ऊंचली दशा तें मति गिरो अधो धरनी ॥५॥
"भागचन्द" या प्रकार, जीव लहे सुख अपार ।
याके निराधार स्वाद् वाद, की उचरनी ॥६॥

भजन (२)

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥ टेक ॥
फल चाखन की बार भरे दृग, मर हैं मूरख रोय ॥१॥
किंचित विषयन के सुख कारण, दुर्लभ देह न खोय ॥२॥
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा, इस निंदड़ी न सोय ॥३॥
इस विरियां में धर्म कल्पतरू सींचत स्याने लोय ॥४॥
तू विष बोवन लागत तोसम और अभागा कोय ॥५॥
जे जग में दुःख दायक वेरस, इस ही के फल सोय ॥६॥
यो मन "मूदर" जानि के भाई, फिर क्यों भोदू होय ॥७॥
अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥

जिनवाणी स्तुति

जिनवाणो हमारी हीरां जड़ी ॥

जिनवाणी हमारी मोंत्या जड़ी ॥ टेक ॥

श्री जी रा मुख से खिरी जिनवाणी ।

प्रभुजी रा मुख से खिरी जिनवाणी ।

गौतम झेली मनमानी, भला गौतम झेली मनमानी ॥१॥
पुण्य उदय उत्तम कुल पायो,

धर्मन जान्यो एक घड़ी, भला धर्मन जान्यो एक घड़ी ॥२॥
जो न सुनेगा जिनवाणी हमारी,

विपत्ति आवे उसही घड़ीजी भला विपत्ति आवे उसही घड़ी ॥३॥

जो जो सुनेगा जिनवाणी हमारी, मोक्ष मिलेगा उसी घड़ी ।
जी भला मोक्ष मिलेगा उसही घड़ी ॥४॥

ऊबा श्रावक अरज करत है, ठाड़ा श्रावक अरज करत है ।
काटो हमारी कर्म लड़ी जी भला काटो हमारी कर्म लड़ी ॥५॥

जिनवाणी हमारी हीरां जड़ी ॥

भजन (१)

परणति सब जीवन की तीन भांति वरणी ।
एक पुर्ण्य एक पाप एक राग हरणी ॥१॥
तामें शुभ अशुभ वन्ध, दोय करे कर्म बन्ध ।
वीतराग परणति, भव समुद्र तरणी ॥२॥
जावत ही शुद्धोपयोग, पावत नहीं मनोयोग ।
तावत ही करण जोग, कही पुण्य करणी ॥३॥
त्याग अशुभ क्रिया कलाप, मत को कदाच पाप ।
शुभ मेंन मगन होय, शुद्धता विसरनी ॥४॥
ऊंच ऊंच दशाधारी, चित्त प्रमाद को बिसारी ।
ऊंचली दशा तें मति गिरो अधो धरनी ॥५॥
"भागचन्द" या प्रकार, जीव लहे सुख अपार ।
याके निराधार स्याद् वाद, की उचरनी ॥६॥

भजन (२)

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥ टेक ॥
फल चाखन की बार भरे दृग, मर हैं मूरख रोय ॥१॥
किंचित विषयन के सुख कारण, दुर्लभ देह न खोय ॥२॥
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा, इस निंदड़ी न सोय ॥३॥
इस विरियां में धर्म कल्पतरु सींचत स्याने लोय ॥४॥
तू विष बोवन लागत तोसम और अभागा कोय ॥५॥
जे जग में दुःख दायक वेरस, इस ही के फल सोय ॥६॥
यो मन "भूदर" जानि के भाई, फिर क्यों भोंदू होय ॥७॥
अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥

जिनवाणी स्तुति

जिनवाणो हमारी हीरां जड़ी ॥

जिनवाणी हमारी मोंत्या जड़ी ॥ टेक ॥

थो जी रा मुख से खिरी जिनवाणी ।

प्रभुजी रा मुख से खिरी जिनवाणी ।

गौतम झेली मनमानी, भला गौतम झेली मनमानी ॥१॥
पुण्य उदय उत्तम कुल पायो,

धर्मन जान्यो एक घड़ी, भला धर्मन जान्यो एक घड़ी ॥२॥
जो न सुनेगा जिनवाणी हमारी,

विपत्ति आवे उसही घड़ीजो भला विपत्ति आवे उसही घड़ी ॥३॥

जो जो सुनेगा जिनवाणी हमारी, मोक्ष मिलेगा उसी घड़ी ।
जी भला मोक्ष मिलेगा उसही घड़ी ॥४॥

ऊवा श्रावक अरज करत है, ठाड़ा श्रावक अरज करत है ।
काटो हमारी कर्म लड़ी जी भला काटो हमारी कर्म लड़ी ॥५॥

जिनवाणी हमारी हीरां जड़ी ॥